

दूरस्थ शिक्षा— स्व अध्ययन सामग्री

एम0ए0 पूर्वाद्ध संस्कृत

प्रथम प्रश्नपत्र— (वैदिक भाषा तथा साहित्य)

लेखिका

डॉ0 प्रमिला मिश्रा

सहायक आचार्या—(संस्कृत) शिक्षा संकाय

जगद्गुरु रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय

चित्रकूट (उ0प्र0) 210204

संपादक

डॉ0 तुलसीदास परौहा

सहायक आचार्य—संस्कृत विभाग

जगद्गुरु रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय

चित्रकूट (उ0प्र0) 210204

मध्यप्रदेश भोज (मुक्त) विश्वविद्यालय

भोपाल (म0प्र0)

एम0ए0 पूर्वार्द्ध  
संस्कृत(प्रथम प्रश्नपत्र)  
वैदिक भाषा तथा साहित्य  
खण्ड-1

इकाई-1 ऋग्वेद सूक्त – (व्याख्या एवं देवता परिचय)

- (1) अग्नि 1/1 (2) इन्द्र 2/11 (3) उषस 1/48  
(4) पुरुष 10/90 (5) कितव (अक्ष) 10/34

इकाई-2 अथर्ववेद, सामवेद एवं यजुर्वेद

- (1) सौमनस्य 3-30 (2) राष्ट्रभिर्वर्धनम् 1-29  
(3) शत्रुनाशनम् 2-20 (4) कालसूक्त- 19-53  
(5) तक्मन् 6-20

(6) सामवेद (कौथुम) पूर्वार्चिक, पवमान काण्ड (1-20 मंत्र) अध्याय 5, प्रथम एवं द्वितीय  
खण्ड (कुल 20 मन्त्र)

- (7) शुक्ल यजुर्वेद- शिवसंकल्प सूक्त- 1-6 मन्त्र

इकाई-3 निरुक्त प्रथम अध्याय (व्याख्या, प्रश्न एवं निर्वचन।

खण्ड-2

इकाई-4 ईशावास्योपनिषद् सम्पूर्ण (व्याख्या एवं प्रश्न) तथा प्रमुख उपनिषदों का परिचय।

इकाई-5 वैदिक संहिताओं, प्रमुख ब्राह्मण ग्रन्थों, षड्वेदांगों, तथा सूत्र साहित्य का परिचय एवं  
वेदों का रचनाकाल और आरण्यक साहित्य।

## खण्ड-1

### इकाई-1 ऋग्वेद सूक्त – (व्याख्या एवं देवता परिचय)

- (1) अग्नि 1/1                      (2) इन्द्र 2/11                      (3) उषस 1/48  
(4) पुरुष 10/90                      (5) कितव (अक्ष) 10/34

### इकाई-2 अथर्ववेद, सामवेद एवं यजुर्वेद

- (1) सौमनस्य 3-30                      (2) राष्ट्राभिवर्धनम् 1-29  
(3) शत्रुनाशनम् 2-20                      (4) कालसूक्त- 19-53  
(5) तक्मन् 6-20

(6) सामवेद (कौथुम) पूर्वार्चिक, पवमान काण्ड (1-20 मंत्र) अध्याय 5, प्रथम एवं द्वितीय खण्ड (कुल 20 मन्त्र)

- (7) शुक्ल यजुर्वेद- शिवसंकल्प सूक्त- 1-6 मन्त्र

### इकाई-3 निरुक्त प्रथम अध्याय (व्याख्या, प्रश्न एवं निर्वचन।

#### परिचय-

खण्ड-1 में अध्ययन सामग्री को तीन इकाइयों में विभक्त किया गया है। आप पहली इकाई में 'ऋग्वेद सूक्त' के अन्तर्गत विभिन्न सूक्तों (अग्नि, इन्द्र, उषस, पुरुष, कितव,) के देवताओं का परिचय एवं सूक्तों की व्याख्या प्राप्त करेंगे तथा दूसरी इकाई में 'अथर्ववेद, सामवेद, एवं यजुर्वेद' के सूक्तों (सौमनस्य, राष्ट्राभिवर्धनम्, शत्रुनाशनम्, कालसूक्त, तक्मन्, सामवेद पूर्वार्चिक, पवमान काण्ड) के देवताओं का परिचय एवं सूक्तों की व्याख्या प्राप्त करेंगे। इस खण्ड की तृतीय इकाई में 'निरुक्त प्रथम अध्याय' की व्याख्या, प्रश्न एवं निर्वचन का प्रतिपादन किया गया है।

## इकाई-1

### ऋग्वेद सूक्त— (ऋग्वेद के सूक्तों की व्याख्या एवं परिचय)

#### इकाई की रूपरेखा—

- 1.1 उद्देश्य
- 1.2 प्रस्तावना
- 1.3 देवता परिचय
- 1.4 अग्नि सूक्त
- 1.5 इन्द्र सूक्त
- 1.6 उषस सूक्त
- 1.7 पुरुष सूक्त
- 1.8 कितव सूक्त
- 1.9 सारांश
- 1.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें
- 1.11 स्वपरख प्रश्न/अभ्यास प्रश्न

#### 1.1 उद्देश्य—

इस इकाई में ऋग्वेद के सूक्तों (अग्नि, इन्द्र, उषस, पुरुष, कितव) का परिचय एवं व्याख्या प्रस्तुत की गयी है। आप इसके अध्ययन से ऋग्वेद के देवताओं के स्वरूप, कार्य, प्राकृतिक आधार एवं ऋचाओं की व्याख्या से परिचय प्राप्त करेंगे।

#### 1.2 प्रस्तावना—

विश्व साहित्य का सर्व प्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेद है। मानव सभ्यता के आदिम युग की भाषा ऋग्वेद की भाषा ही है यहाँ इस इकाई में आप ऋग्वेद के देवताओं का परिचय एवं अग्नि, इन्द्र, उषस, कितव, सूक्तों की व्याख्या, पद पाठ आदि से परिचित हो सकेंगे।

#### 1.3 देवता परिचय

##### अग्नि—

वैदिक देवताओं में अग्नि अत्यन्त महत्त्वपूर्ण देवता है। ऋग्वेद के लगभग 200 सूक्तों में अग्नि की स्तुति की गई है। अग्नि के सम्बन्ध में कतिपय मुख्य तथ्य इस प्रकार हैं—

(1) ऋग्वेद में स्थान—ऋक्संहिता का प्रथम मन्त्र अग्नि देवता को ही सम्बोधित किया गया है तथा प्रथम पद भी 'अग्निम्' ही है। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि ऋग्वैदिक देवताओं में अग्नि प्रधान देव हैं। अग्नि

का अर्थ है— यह यज्ञ में प्रदान की गई हवि को देवताओं तक पहुँचाता है। ऋग्वेद के तीन प्रमुख देवताओं में अग्नि का द्वितीय स्थान है। ऋग्वेद के 200 सम्पूर्ण सूक्तों के अतिरिक्त अन्य अनेक सूक्तों में अन्य देवताओं के साथ अग्नि की स्तुति की गई है। प्रायः ऋग्वेद के सभी मण्डलों में प्रारम्भिक सूक्त अग्नि को ही सम्बोधित किये गये हैं।

**(2) उत्पत्ति**—अप्, उषस्, त्वष्टा, द्यावापृथिवी और विष्णु को अग्नि का उद्भावक कहा गया है, यह दो अरणियों के संघर्ष से उत्पन्न होता है। अरणियों में ऊपर वाली अरणि को पति और नीचे वाली अरणि को पत्नी कहा गया है, जिनके संयोग से शिशुक्त अग्नि की उत्पत्ति होती है। अग्नि को दस युवतियों से भी उत्पन्न कहा गया है। ये दस युवतियाँ मनुष्य के हाथों की दसो अंगुलियाँ ही हैं। है अग्नि को 'सहसः पुत्र' भी कहा गया क्योंकि अग्नि को उत्पन्न करने के लिए सहस (शक्ति) भी लगानी पड़ती है।

**(3) स्वरूप**—अग्नि का धर्म है प्रकाशित होना। वह अंगारमय है, प्रकाशमय है (अंगिरा, राजन्तम्)। ऋग्वेद में अग्नि को घृत-पृष्ठ, घृत-प्रतीक, घृत-लोम, मद्रजिह्व, शौचिषकेश आदि भी कहा गया है। वे भास्वर ज्वालाओं वाले हैं। उनका वर्ण भास्वर है। वे हिरण्यरूप हैं। वे सूर्य की भाँति चमकते हैं। उनकी प्रभा उषा सूर्य एवं विद्युत् जैसी है।

**(4) कार्य**— अग्नि यज्ञ में देवताओं को बुलाता है। वह उत्तम धनादिकों का प्रदाता है। अग्नि के माध्यम से यजमान को पुष्टि यश और वीर पौत्रादि की प्राप्ति होती है। यह यज्ञों का रक्षक और सत्य का प्रकाशक है। कर्मफल को प्रदान करना भी अग्नि का ही कर्म है। अग्नि स्वयं प्रकाशवान होने में रात्रि को प्रकाशित करता है। जिस प्रकार एक पिता अपने पुत्र के लिए कल्याण-भावना रखता है उसी प्रकार अग्नि भी कल्याणकारी है। अग्नि यज्ञ के प्रत्येक रहस्य को जानता है, इसीलिए इन्हें जातवेदस भी कहा गया है। जिस प्रकार ऋतु और युद्धकर्म इन्द्र के अधीन है। उसी प्रकार आर्यों के सारे गृहकृत्य अग्नि के अधीन है। अग्नि के सम्बन्ध में यह भी कहा गया है कि जिस यज्ञकर्म का साक्षी अग्नि होता है, केवल उसका ही फल देवताओं के पास पहुँचता है।

**(5) प्राकृतिक आधार**—अग्नि का प्राकृतिक आधार स्पष्ट है। हमारे सामने अग्नि के मुख्यतः तीन रूप दृष्टिगोचर होते हैं— काठों में उत्पन्न दावाग्नि, जलों में उत्पन्न वाडवाग्नि एवं द्युलोक से उत्पन्न वैद्यु-ताग्नि। ये अग्नि के रूप में मान्यता प्राप्त कर चुके हैं। यद्यपि जलों के संघर्षण से अग्नि की उत्पत्ति नहीं होती तथापि वाडवाग्नि को ही सम्भवतः अप से प्रादुर्भूत अग्नि माना गया है। आधुनिक युग में विद्युत् शक्ति की उत्पत्ति भी जलों के द्वारा की जाती है। बादलों के पारस्परिक टकराव से उत्पन्न आकाशीय विद्युत् भी तो जलों से ही उत्पन्न माना जा सकता है क्योंकि बादल भी जलों के ही रूप हैं। इस प्रकार यह सिद्ध है कि वैदिक अग्नि देवता का प्राकृतिक आधार भी अग्नि के उपर्युक्त रूप ही हैं।

**(6) मानव जीवन से सम्बन्ध**—अग्नि का मानव जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध है। सम्पूर्ण गृहकृत्य के लिए अग्नि की महती आवश्यकता है। प्रत्येक घर में उसका निवास है। अग्नि ही एक ऐसा देवता है जो मनुष्य के जन्म से मरणपर्यन्त उसका साथ देता है। अग्नि के माध्यम से ही इस संसार में प्रकाश का जन्म हुआ है। वैदिक युग में ऋषियों के समक्ष अग्नि की उपादेयता सर्वाधिक सिद्ध हुई। इसका मुख्य कारण यह है कि अग्नि की सहायता से ही यज्ञानुष्ठान, भोजन—पाक, तथा शील इत्यादि से रक्षा हो पाती थी। इसीलिए वैदिक ऋषि अग्निदेव से अपने उन्नति एवं कल्याण की प्रार्थना करता है।

### **इन्द्र—**

इन्द्र ऋग्वेद का सर्वाधिक लोकप्रिय और महत्त्वपूर्ण देवता है। ऋग्वेद के 250 सूक्तों में इन्द्र की स्तुति स्वतन्त्र रूप में की गई है तथा 50 सूक्तों में अन्य देवताओं के साथ भी उसे स्तुत किया गया है। इस प्रकार ऋग्वेद का लगभग चतुर्थांश इन्द्र के ही गुणगानों से भरा हुआ है। इन्द्र की कतिपय विशेषताएं निम्नलिखित हैं।

**स्वरूप**—ऋग्वेद में इन्द्र का चित्रण मानवाकृति रूप में किया गया है। उसके विशाल शरीर, शीर्ष, भुजाओं एवं बड़े उदर का उल्लेख अनेक बार किया गया है। उसके जबड़ों एवं अधरों का भी उल्लेख प्राप्त होता है। यह भूरे वर्ण का देव है। यहाँ तक कि उसके केश एवं दाढ़ी भी भूरे वर्ण के ही है। उसका मुख सुन्दर है। इसकी भुजायें भी बज्रवत् पुष्ट एवं कठोर हैं। वह सात रश्मियों (किरणों) से युक्त है।

**जन्म एवं देवताओं से सम्बन्ध**—ऋग्वेद के सम्पूर्ण दो सूक्तों में इन्द्र के जन्म के सम्बन्ध में अनेक तथ्यों को बतलाया गया है। निऋति तथा शवसी नामक गाय को उसकी माँ कहा गया है। उसके पिता द्यौः या त्वष्टा हैं। एक स्थल पर इन्द्र को सोम से उत्पन्न कहा गया है। अग्नि और पूषन् इनके भाई हैं। इन्द्राणी उसकी पत्नी और मरुद्गण मित्र तथा सहायक हैं। इन्द्र को वरुण, वायु, सोम, बृहस्पति, पूषन् और विष्णु के साथ युग्म रूप से भी स्तुत किया गया है।

**कार्य**—इन्द्र ने जन्म लेते ही समस्त देवताओं को अपने पराक्रम से आक्रान्त कर दिया। इसके पौरुष की महिमा से द्युलोक एवं पृथिवी—लोक काँप गये। इन्द्र का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य वृत्रवध है। वृत्रवध की गाथाओं से इन्द्र—सूक्त भरे पड़े हैं। इस गाथा के वर्णन से ऋषि अघाते नहीं हैं। इन्द्र ने सोमरस का पान करने का तो मानो व्रत ही ले लिया है। सोम—लता को पीसने, निचोड़ने एवं पकाने वाले की वह रक्षा करता है। सोमरस के पानकर्ता के रूप में इन्द्र वैदिक देवताओं में अपना स्थान नहीं रखता। अचल या अनश्वर पदार्थों को चल या नश्वर बनाना भी इन्द्र के ही वश में है। इसीलिए तो योद्धागण अपनी विजय के लिए इन्द्र का आवाहन करते हैं।

**प्राकृतिक आधार**—अनेक वैदिक विद्वान् इन्द्र को प्रकाश का देवता मानकर उसको सूर्य के साथ समीकृत करते हैं। लोकमान्य तिलक वृत्र को हिम का प्रतीक मानते हैं जिसे इन्द्र अर्थात् सूर्य नष्ट करता है। उनके

अनुसार आर्यों के आदि देश उत्तर ध्रुव में शीतऋतु में सभी नदियों की धारायें जल के अभाव के कारण रुक जाती हैं। वसन्त का सूर्य बर्फों को पिघला कर जलधाराओं को प्रवाहित करता है।

उपर्युक्त विवेचना के आधार पर यह निःसन्देह कहा जा सकता है कि वैदिक देवताओं में इन्द्र का स्थान सर्वोपरि है। इसीलिए परवर्ती साहित्य में इन्द्र को देवताओं का राजा माना गया है। तथा उनके पौराणिक ग्रन्थों में इन्द्र वर्षा कराने वाले देवता के रूप में विख्यात हैं।

### **उषा (उषस)–**

ऋग्वेद के 20 सूक्तों में उषा देवी की स्तुति की गई है। उषा के नाम का उल्लेख तो लगभग 200 बार से भी अधिक हुआ है। उषा शब्द 'वस्' प्रकाशित होना अर्थ वाली धातु से निष्पन्न हैं। उषा शब्द का अर्थ है— 'प्रकाशित होने वाली देवी'। उषा के वर्णन में वैदिक ऋषि ने अपनी काव्य-प्रतिभा का पूर्ण परिचय दिया है। उषा से सम्बन्धित कतिपय तथ्य इस प्रकार हैं—

**उषा का जन्म**—उषा को अमर तथा अजर कहा गया है। उसका स्वरूप अविनाशी है, परन्तु उसे अनेक स्थानों पर द्युलोक की दुहिता (पुत्री) कहा गया है यह सुजाता है अर्थात् उसका जन्म किसी कुल में हुआ है। अनेक स्थलों पर उषा को प्रतिदिन उत्पन्न होने वाली भी कहा गया है।

**स्वरूप तथा अन्य देवों के साथ सम्बन्ध**—वैदिक साहित्य में उषा देवी के समान मनोहारी स्वरूप अन्य किसी भी देवता का प्राप्त नहीं होता। उषा नर्तकों की भाँति मोहक परिधान में चमचमाती हुई धरती और अम्बर में अपने प्रकाश को फैला देती है। उषा अपनी अरुणिमा, अपने रुचिर मुखचन्द्र, झिलमिलाता वक्षःस्थल, पतली-पतली, लाल-लाल परियों जैसी खुली अंगुलियाँ, आकाश के रंगमंच पर नवेला नृत्य और दूधभरा हास्य, इन सबके द्वारा वैदिक ऋषि को विवश कर देती हैं अपने स्वरूप गान के लिए तथा अपना आपा खो बैठने के लिए। उषा स्वर्णिम रंग वाली, सुन्दर मुख वाली तथा किरणों से अभिव्यक्त होने वाली है। वह नित्य युवती है, नवोड़ा है।

उषा का अधिकतर सूर्य के साथ सम्बन्ध बतलाया गया है। वह सूर्य की पत्नी है। सूर्य एक रसिक युवक की भाँति उसका अनुगमन करता है। एक स्थान पर तो उषा को सूर्य की माता तथा सूर्य को उसका कान्ति-पुत्र कहा गया है। अग्नि भी उषा का प्रेमी माना गया है। उषा अग्नि को भड़काती है तथा अग्नि उससे मिलने के लिए अपनी लपटों को उठाता है। अश्विनी-कुमारों को भी उषा का प्रेमी कहा गया है। रात्रि उषा की बड़ी बहन है। सविता को भी उषा का प्रेमी कहा गया है।

**प्राकृतिक आधार**—उषा को प्रातः काल की अधिष्ठात्री देवी के रूप में चित्रित किया गया है। सूर्योदय से थोड़ा पहले का समय ही उषा के आगमन का समय माना गया है। उषाकाल में ही धरती और अम्बर में प्रकाश प्रसारण होने लगता है। पक्षियों का मधुर कलरव भी इसी समय प्रारम्भ हो जाता है। उषाकाल के

पश्चात् ही सूर्योदय होता है, इसीलिए सूर्य को उषा के पीछे आते हुए प्रेमी के रूप में कहा गया है। उषा के आते ही सभी जीवधारी विचरणशील हो जाते हैं।

**कार्यशीलता**—उषा का प्रमुख कार्य प्रकाश का वितरण करना है। प्रकाश फैलाने के साथ ही वह अन्धकार को भी भगा देती है। सभी जीवों को कार्य करने के लिए प्रेरित करना, भक्तों या उपासकों की आयु बढ़ाना, धन प्रदान करना, अपने प्रकाश से स्तोता के शत्रुओं को दूर भगाना, द्वेष करने वाले लोगों को पृथक् करना तथा दिनों का नेतृत्व करना, उषा देवी के प्रमुख कार्य हैं। उषा को विविध उपहारों तथा दिनों का नेतृत्व करने वाली देवी भी कहा गया है।

उपर्युक्त गुणों के कारण ही वैदिक उषा देवी से अपने लिए धन प्रदान करने, शत्रु को दूर भगाने, आयु को बढ़ाने तथा आशीर्वादों से अपनी रक्षा करने के लिए प्रार्थना करता है।

### **पुरुष—**

ऋग्वेद—संहिता के दशम मण्डल में कतिपय ऐसे सूक्त उपलब्ध होते हैं जो देवस्तुतियों से भिन्न हैं। पुरुष—सूक्त भी इन्हीं सूक्तों में से एक है। इस सूक्त में सृष्टि उत्पत्ति से सम्बन्धित वर्णन किया गया है। इस सूक्त में आदि पुरुष के शरीर से देवताओं द्वारा सृष्टि का निर्माण किया जाना वर्णित है। इसमें सृष्टि रचना की प्रक्रिया को एक यज्ञ का रूप दिया गया है। कतिपय परिवर्तनों के साथ यह सूक्त सामवेद, शुक्ल यजुर्वेद तथा अथर्ववेद में भी उपलब्ध होता है।

**(1) पुरुष का स्वरूप**—पुरुष सहस्र शिरों, सहस्र नेत्रों एवं सहस्र पैरों वाला देव है। यहाँ पर 'सहस्र' शब्द उपलक्षण—मात्र है। सहस्र का अर्थ असंख्य है। वह सम्पूर्ण भूमण्डल को व्याप्त करने के पश्चात् भी कुछ अवशिष्ट रहता है। इस कथन का तात्पर्य यह है कि पुरुष ही सर्वव्यापी ईश्वर है जो संसार में सर्वत्र व्याप्त है तथा जीवों के सभी क्रिया—कलापों का निरीक्षण करते हुए उसे कर्मफल भी प्रदान करता है।

**(2) पुरुष का विभाजन**—विराट् पुरुष का एक चौथाई भाग मायोपहित होकर जन्म मरण के बन्धन में पड़ता रहता है। उसका तीन—चौथाई भाग अपेक्षाकृत अत्यधिक उत्कृष्ट है तथा विनाश रहित है। एवं द्युलोक में स्थित है। उसका एक चौथाई भाग ही जड़ और चेतन के रूप में व्यवस्थित होता है।

**(3) पुरुष के द्वारा यज्ञ**—सृष्टि की उत्पत्ति के लिए देवताओं, ऋषियों एवं साध्यों ने जो यज्ञ किया, उसमें पुरुष को ही हवि के रूप में कल्पित किया। उस यज्ञ में घृत, ईंधन एवं हविष् के रूप में क्रमशः वसन्त, ग्रीष्म और शरद् ऋतुओं का प्रयोग हुआ।

इस यज्ञ को मानस—यज्ञ के प्रतीक के रूप में भी मानने की अवधारणा विद्वानों में व्याप्त है। इस मानस यज्ञ में सत्त्व, रजस् एवं तमस् गुण ही प्रधान हैं। इन्हें ही ईंधन और हवि के रूप में परिकल्पित किया गया है।



**(4) पुरुष द्वारा सृष्टि की उत्पत्ति**—उसी पुरुष से विराट् की उत्पत्ति हुई। पशु पक्षी भी उसी से उत्पन्न हुए। पुरुष के मुख से ब्राह्मण, बाहुओं से क्षत्रिय, उरुओं से वैश्य एवं दोनों पैरों से शूद्र उत्पन्न हुए। सूर्य, चन्द्र, इन्द्राग्नि और वायु आदि देवताओं की उत्पत्ति क्रमशः पुरुष के नेत्र, मन, मुख और प्राण से हुई है। उपर्युक्त देशों के निवास के लिए द्युलोक, अन्तरिक्ष एवं पृथ्वी लोक की उत्पत्ति क्रमशः शिर, नाभि एवं पादों से हुई ऋक, यजुष, सामन् एवं छन्दस की भी उत्पत्ति उसी से हुई।

#### **अक्ष—**

ऋग्वेद संहिता में जहाँ एक ओर देवताओं की स्तुति करते हुए उनसे अभीष्ट की प्राप्ति के लिए याचनायें की गई हैं, वहीं दूसरी ओर सामाजिक कुरीतियों एवं मानवीय दुर्व्यसनों को दूर करने से सम्बन्धित सूक्तों का संकलन भी किया गया है। समाज में जब भोग विलास और शक्ति का उदय होता है, तब द्यूतकर्म भी अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच जाता है। ऋग्वैदिक युग में जुआ खेलना एक बहुत प्रचलित सामाजिक दुर्व्यसन था। ऋग्वेद के दशम मण्डल का 34वाँ सूक्त इस सम्बन्ध में पर्याप्त प्रकाश डालता है।

**अक्षों की संख्या एवं खेलने का स्थान**—ऋग्वेद में अक्षों की संख्या के लिये 'त्रियचांशः' शब्द प्रयुक्त है। विद्वानों ने इस शब्द के अनेक अर्थ किये हैं। जैसे पन्द्रह, तिरपन एवं एक सौ पच्चीस। परवर्ती संहिताओं एवं ब्राह्मण ग्रन्थों में पांसा फेंकने से सम्बन्धित व्याहृतियों की तालिकायें प्राप्त होती हैं। पांसा फेंकने के लिए भूमि पर ही एक नीचा सा स्थान बना लिया जाता था। दाँव पर रखी हुई वस्तु 'विज' कहलाती थी।

**अक्षों का स्वरूप एवं प्रभाव**—अक्षों को द्यूतकार देवता मानता है। उसके हृदय में अक्षों के प्रति श्रद्धा है जो शिल्पकार को अपने उपकरणों में, लेखक को अपनी लेखनी में तथा वणिक् को अपनी तुला में होती है। अक्ष किसी वृक्ष के फलों के बीज रूपी विग्रह वाले होते हैं। इनका रंग भूरा होता है। अक्षों को किसी पात्र—विशेष में डालकर भली—भांति हिलाकर द्यूतपटल पर फेंका जाता है। द्यूतपटल पर फुदकते हुए वे अक्ष बड़े ही मनोहारी दिखलाई पड़ते हैं। अक्षों को दिव्य अंगारस्वरूप एवं महाशक्तिशाली कहा गया है।

अक्ष द्यूतकार को उसी प्रकार आनन्दित करते हैं जैसे सोमरस देवताओं को। अक्ष द्यूतकार को जगाने का कार्य भी करते हैं। द्यूतकार चिन्ता के वशीभूत होकर रात भर जागता रहता है। अक्षों के अन्दर एक प्रकार की मोहिनी शक्ति होती है। द्यूतकार इसी मोहिनी शक्ति के वश में रहता है। द्यूतकार अनेक बार द्यूतकार्य से विमुख होने का निश्चय करके भी ज्यों ही द्यूतपटल पर पासों को फुदकते हुए देखता है तो ही अपने आपको भूल जाता है। अक्षगण कभी भी उग्र से व्यक्ति के समक्ष भी पराजय को नहीं स्वीकारते। अक्षों की ध्वनि को द्यूतपटल पर सुनकर जुआरी उसी प्रकार द्यूतस्थल की ओर दौड़ पड़ता है जैसे कुलटा स्त्री संकेत—स्थल की ओर दौड़ पड़ती है।

**अक्षों की विलक्षणता**—द्यूतपटल पर पड़े हुए भी अक्ष द्यूतकार के मर्मस्थल को भेदने वाले होते हैं। स्वयं हस्तविहीन होकर भी सहस्र को पराभूत करते रहते हैं। शीतल स्पर्श वाले होकर भी द्यूतकार के हृदय को

जलाते रहते हैं। स्वरूप और काष्ठवत् होते हुए भी अक्ष किसी द्यूतकार को क्षणमात्र के लिए बसा देते हैं तथा किसी को उजाड़ देते हैं। विजेता द्यूतकार के लिए वे प्रसन्नतादायक तथा पराजित के लिए दुःखप्रद भी होते हैं।

**द्यूतक्रीड़ा का कुपरिणाम**—द्यूतकार को समाज निकृष्ट कोटि का व्यक्ति समझने लगता है। द्यूतकार की पत्नी, सास तथा अन्य शुभाकाँक्षी व्यक्ति उससे द्वेष करते हैं। द्यूतकार के प्रति कोई भी व्यक्ति दया-भाव नहीं दिखलाता। द्यूतकार एक बूढ़े किन्तु मूल्यवान् अश्व की भाँति किसी के लिए प्रिय नहीं रह पाता। द्यूतकार अनुकूल आचरण वाली अपनी पतिपरायणा पत्नी तक को दाँव पर हार जाता है। दूसरों की पत्नियों को देखकर तथा सुसंस्कृत अन्य गृहों को देखकर वह मानसिक क्लेष पाता है। द्यूतकार्य का सबसे कठिन दुष्परिणाम तो यह होता है कि उसकी प्राणप्रिया पत्नी को दूसरे लोग आलिंगित करते हैं। जब दाँव हार कर द्यूतकार विजेता द्यूतकार को दाँव पर रक्खी हुई सम्पत्ति नहीं चुका पाता तो राजा के कर्मचारी उसे रज्जुबद्ध करके ले जाते हैं। उस समय उसके मित्र, पिता, माता, भाई उसको देखना पसन्द नहीं करते तथा यह भी कह डालते हैं कि हम लोग बंधे हुए उसको नहीं जानते।

**अमर संदेश**—अक्षसूक्त के अधिकांश भाग में द्यूतकार्य के दुष्परिणामों को बतलाकर वैदिक ऋषि एक अमर सन्देश प्रदान करता है, कि अक्षों से कभी भी मत खेलो, खेती करो। कृषि द्वारा प्राप्त धन को ही आदर-भाव से अपना समझो तथा उसमें ही आनन्द का अनुभव करो। कृषि कार्य में ही गायें हैं, पालतू पशु तथा सम्पूर्ण समृद्धि है।

हे अक्षौ! हमसे मित्रता करो। अपनी शक्ति का प्रयोग हम पर मत करो तथा सदैव हमारी सहायता करो।

#### 1.4 अग्निसूक्त— (ऋ01/1)

(देवता—अग्नि, ऋषि— मधुच्छन्दा, छन्द—गायत्री)

अग्निमी ळे पुरोहितं यज्ञस्य दे वमृत्विजम्।

होता रं रत्नघातम्।।1।।

**पदपाठ**— अग्निम्। ई ळे। प रःऽहितम्। यज्ञस्य। दे वम्। ऋत्विजम्। रत्नऽघातम्।

**अन्वय**— यज्ञस्य यस्य पुरोहितम् देवम् होतारम् ऋत्विजम् रत्नघातम् अग्निम् ईळे।

**शब्दार्थ**— यज्ञस्य पुरोहितम् ऋ यज्ञ के पुरोहित, जिस प्रकार राजा का पुरोहित उसके अभीष्ट को सम्पादित करता है, उसी प्रकार अग्नि भी यज्ञ के अपेक्षित होम को सम्पादित करता है। अतः अग्नि को यज्ञ का पुरोहित कहा गया है। देवम् ऋ प्रकाशयुक्त या दान आदि गुणों से युक्त । होतारम् ऋत्विजम् ऋ देवताओं को यज्ञ में बुलाने वाला ऋत्विक्, होतृ (होता) नामक ऋत्विक्। यज्ञ कराने वाले को ऋत्विक् कहते हैं। सामान्यतः प्रत्येक यज्ञ में चार ऋत्विक् होते हैं— होतृ (होता), उद्गातृ (उद्गाता), ब्रह्मन् (ब्रह्मा) और अध्वर्यु।

देवताओं के यज्ञ में अग्नि ही होतृ नामक ऋत्विक् बनता है। अतः अग्नि को होतृ नामक ऋत्विक् कहा गया है। रत्नधातमम् ऋत्विक् रत्नों का सर्वाधिक दाता या धारणकर्ता, रत्नदाताओं या रत्न धारण करने वालों में श्रेष्ठ, यज्ञ के फल के रूप में प्राप्त होने वाले उत्तम पदार्थों को सर्वाधिक मात्रा में धारण करने वाला या देने वाला। अग्निम् ऋत्विक् अग्नि (देवता) को। ईळे ऋत्विक् पूजा करता हूँ, स्तुति करता हूँ, वन्दना करता हूँ।

**अनुवाद**—यज्ञ के पुरोहित, प्रकाशयुक्त (या दान आदि गुणों से युक्त, देवम्), देवताओं को यज्ञ में बुलाने वाले ऋत्विक् तथा रत्नों के सर्वाधिक दाता अग्नि (देवता) को मैं पूजता हूँ (अग्नि की स्तुति करता हूँ)।

**अग्निः पूर्वभिः ऋषिभिरीऽयो नूतनैरु त।**

**स दे वाँ एह वक्षति।।2।।**

**पदपाठ**—अग्निः। पूर्वभिः। ऋषिभिः। ईऽयः। नूतनैः। उत। सः। दे वान्। आ। इह। वक्षति।।

**अन्वय**—अग्निः पूर्वभिः उत नूतनैः ऋषिभिः इऽयः सः देवान् इह आ वक्षति।

**शब्दार्थ**— अग्निः ऋत्विक् अग्नि (देवता)। पूर्वभिः ऋत्विक् प्राचीन। उत ऋत्विक् और। नूतनैः ऋत्विक् नवीन, अर्वाचीन। ऋषिभिः ऋत्विक् ऋषियों के द्वारा। ईऽयः ऋत्विक् स्तुत्य, स्तुति करने योग्य, पूजनीय। सः ऋत्विक् वह (अग्नि देवता)। देवान् ऋत्विक् देवताओं को। इह ऋत्विक् यहाँ (इस यज्ञ में)। आ वक्षति ऋत्विक् ले आवे।

**अनुवाद**— अग्नि (देवता) प्राचीन और नवीन ऋषियों के द्वारा स्तुत्य (पूजनीय, स्तुति किये जाने योग्य, स्तुति करने योग्य) है। वह देवताओं को यहाँ (इस यज्ञ में) ले आवे।

**अग्निना रयिमश्नवर्तपोषमेव दिवेदिवे।**

**यशसं वीरवत्तमम्।।3।।**

**पदपाठ**— अग्निना। रयिम्। अश्नवत्। पोषम्। एव। दिवेऽदिवे। यशसम्। वीरवत्ऽतमम्।

**अनुवाद**— अग्निना दिवेदिवे पोषम् एवं यशसं वीरवत्तमं रयिम् अश्नवत्।

**शब्दार्थ**—अग्निना ऋत्विक् अग्नि के द्वारा, अग्नि के माध्यम से। दिवेदिवे ऋत्विक् प्रतिदिन। पोषम् ऋत्विक् बढ़ने वाले, वृद्धि को प्राप्त होने वाले। एव ऋत्विक् ही। यशसम् ऋत्विक् यश से युक्त, कीर्तिदायक। वीरवत्तमम् ऋत्विक् श्रेष्ठ वीर पुरुषों से युक्त, पुत्रादि से अतिशय रूप से युक्त। रयिम् ऋत्विक् धन को। अश्नवत् ऋत्विक् प्राप्त करे।

**अन्वय**— (अग्नि की पूजा करने वाला मनुष्य) अग्नि के माध्यम से प्रतिदिन वृद्धि (पुष्टि) को ही प्राप्त होने वाले यश से युक्त (कीर्तिदायक) और श्रेष्ठ वीर पुरुषों से युक्त धन को प्राप्त करें (अर्थात् अग्नि के द्वारा यजमान ऐसा धन प्राप्त करे, जो प्रतिदिन बढ़ने ही वाला हो और जो यश तथा श्रेष्ठ वीर पुरुषों से समन्वित हो)।

**अग्निं यं यज्ञमध्वरं विश्वतः परिभूरसि।**

**स इद्देवेषु गच्छति।।4।।**

**पदपाठ**— अग्ने। यम्। यज्ञम्। अध्वरम्। विश्वतः। परिभूः। असि। सः। इत्। देवेषु। गच्छति।।

**अन्वय**— अग्ने! यम् अध्वरं यज्ञं विश्वतः परिभूः असि सः इत् देवेषु गच्छति ।

**शब्दार्थ**—अग्ने त्र हे अग्नि! यम् त्र जिस। अध्वरम् त्र हिंसारहित। यज्ञम् त्र यज्ञ को। विश्वतः त्र चारों ओर से। परिभूः असि त्र व्याप्त करके स्थित होते हो। सः त्र वह। इत् त्र ही। देवेषु त्र देवताओं में। गच्छति त्र जाता है, पहुँचता है।

**अनुवाद**—हे अग्नि। (तुम्) जिस हिंसारहित यज्ञ को चारों ओर से व्याप्त करके स्थित होते हो वह (यज्ञ) ही देवताओं में जाता है। (देवताओं को प्राप्त होता है)।

**अग्निर्होता कविक्रतुः सत्यश्चित्रश्रवस्तमः ।**

**दे वो दे वेभिरागमत् ॥ 5 ॥**

**पदपाठ**—अग्निः । होता । कविऽक्रतुः । सत्यः । चित्रश्रवःऽतमः । दे वः । दे वेभिः । आ । गमत् ॥

**अन्वय**—होता कविक्रतुः सत्यः चित्रश्रवस्तमः अग्निः देवः देवेभिः आगमत् ।

**शब्दार्थ**— होता त्र (देवताओं को) बुलाने वाला, (देवताओं का) आह्वान करने वाला। कविक्रतुः त्र कवि की प्रज्ञा (क्रतु) वाला, उत्कृष्ट (या प्रशंसनीय) वृद्धि (या कम) वाला, क्रान्तप्रज्ञ अर्थात् भूत, भविष्य एवं वर्तमान को जानने वाला। सत्यः त्र सत्यशील। चित्रश्रवस्तमः त्र अतिशय रूप में (अर्थात् अत्यधिक मात्रा में) विविध कीर्तियों वाला। अग्निः त्र अग्नि। देवः त्र देवता। देवेभिः त्र देवताओं के साथ। आगमत् त्र आवे।

**अनुवाद**— (यश में देवताओं को) बुलाने वाला, उत्कृष्ट बुद्धि (या कर्म) वाला, सत्यशील (अर्थात् निश्चय ही याग के फलों को देने वाला) तथा अतिशय रूप में विविध कीर्तियों (यश) वाला अग्नि देवता (अन्य) देवताओं के साथ (इस यज्ञ में) आवे।

**यद्गदाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि ।**

**तवेत्तत्सत्यमंगिरः ॥ 6 ॥**

**पदपाठ**—यत् । अंग । दाशुषे । त्वम् । अग्ने भद्रम् । करिष्यसि । तव । इत् । तत् । सत्यम् । अंगिरः ॥

**अन्वय**— अंग अग्ने! त्वं दाशुषे यत् भद्रं, अंगिरः! तत् तव इत् सत्यम् ।

**शब्दार्थ**— अंग अग्ने त्र हे अग्नि। त्वम् त्र तुम्। दाशुषे त्र हवि प्रदान करने वाले (यजमान) के लिए, दान करने वाले के लिए। यत् त्र जो। भद्रम् त्र कल्याणकारी कर्म। अंगिरः त्र हे अंगारमय अग्नि, हे अंगिरा मुनि को जन्म देने वाले अग्नि। तत् त्र वह। तव त्र तुम्हारा। इत् त्र ही। सत्यम् त्र सत्य है।

**अनुवाद**— हे अग्नि! तुम् हवि प्रदान करने वाले (अथवा दान करने वाले) (यजमान) के लिए जो कल्याण (कल्याणकारी कर्म) करोगे, हे अंगिरा (अंगारमय अग्नि)! वह तुम्हारा ही (अर्थात् तुम्हारे ही सुख का साधन है)— यह बात सत्य है।

**उप त्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्धिया वयम् ।**

**नमो भरन्तइमसि ।।7।।**

**पदपाठ**—उप । त्वा । अग्ने । दिवेऽदिवे । दोषाऽवस्तः । धिया । वयम् । नमः । भरन्तः । आ । इमसि ।।

**अन्वय**—दोषावस्तः अग्नेः । वयं दिवेदिवे नमः भरन्तः त्वा उप आ इमसि ।

**शब्दार्थ**—दोषावस्त ऋ रात्रि (दोषा) को प्रकाशित करने वाले । अग्ने ऋ हे अग्नि! वयम् ऋ हम लोग । दिवेदिवे ऋ प्रतिदिन । धिया ऋ बुद्धि से, स्तुति से, श्रद्धा से । नमः ऋ नमस्कार । भरन्तः ऋ करते हुए । त्वा ऋ तुम्हारे । उप ऋ समीप । आ इमसि ऋ आते हैं ।

**अनुवाद**—हे रात्रि को प्रकाशित करने वाले अग्नि! हम लोग प्रतिदिन श्रद्धापूर्वक नमस्कार करते हुए तुम्हारे समीप आते हैं ।

**राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम् ।**

**वर्धमान् स्वे दमे ।।8।।**

**पदपाठ**—राजन्तम् । अध्वराणाम् । गोपाम् । ऋतस्य । दीदिविम् । वर्धमानम् । स्वे । दमे ।

**अन्वय**—राजन्तम् अध्वराणां गोपाम् ऋतस्य दीदिवं स्वे दमे वर्धमानम् ।

**शब्दार्थ**—राजन्तम् ऋदेदीप्यमान, प्रकाशित होते हुए । ध्वराणाम् ऋहिंसा—रहित यज्ञों के । गोपाम् ऋ रक्षक । ऋतस्य ऋ सत्य के (अथवा कर्मफल के) । दीदिविम् ऋ प्रकाशक (अथवा द्योतक) । स्वे दमे ऋ अपने घर (यज्ञ-शाला) में । वर्धमानम् ऋ बढ़ते हुए ।

**अनुवाद**—देदीप्यमान (प्रकाशित होते हुए), हिंसारहित यज्ञों के रक्षक, सत्य के प्रकाशक (अथवा यज्ञ-फल के द्योतक) और अपने घर (यज्ञशाला) में बढ़ते हुए (तुम्हारे समीप हे अग्नि! हम आते हैं) । (अग्नि में आहुति डालते समय अग्नि को देखकर शास्त्रप्रसिद्ध यज्ञ-फल का स्मरण हो जाता है । अतएव अग्नि को यज्ञफल का द्योतक कहा गया है ।

**स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव ।**

**सचस्वा नः स्वस्तये ।।9।।**

**पदपाठ**—सः । नः । पिताऽइव । सूनवे । अग्ने । सुऽउपायनः । भव । सचस्व । नः । स्वस्तये ।

**अन्वय**—अग्ने! सः सूनवे पिता इव नः सूपायनः भव । स्वस्तये नः सचस्व ।

**शब्दार्थ**—अग्ने ऋ हे अग्ने! सः ऋ वह । सूनवे ऋ पुत्र के लिए । पिता इव ऋ पिता की तरह । नः ऋ हमारे लिए । सूपायनः ऋ आसानी से पहुँचने योग्य, सरलता से पहुँचने योग्य, सुगम । भव ऋ होवो, बन जाओ । स्वस्तये ऋ कल्याण के लिए । नः ऋ हमारे । सचस्व ऋ साथ रहो ।

**अनुवाद—** हे अग्नि! वह (तुम) पुत्र के लिए पिता की तरह हमारे लिए सरलता से पहुँचने योग्य बन जाओ (सुगम बनो) (अर्थात् जिस प्रकार पिता अपने पुत्र के लिए आसानी से पहुँचने योग्य होता है, उसी प्रकार तुम हमारे लिए पहुँचने योग्य होवो)। (हमारे) कल्याण के लिए हमारे साथ रहो।

### 1.5इन्द्रसूक्त— (ऋ० 2 |12)

(ऋषि—गृत्समद्, देवता—इन्द्र, छन्द—त्रिष्टुप)

यो जात एव प्रथमो मनस्वान्दे वो दे वान्क्तु ना पर्यभूषत्।

यस्य शुष्माद्रोदसी अभ्यसेतां नृम्णस्य महनास जनास इन्द्रः।।1।।

**पदपाठ—** यः। जातः। एव। प्रथमः। मनस्वान्। देवः। देवान्। ऋतुना। परिऽअभूषत्। यस्य शुष्मात्। रोदसी इति। अभ्यसेताम्। नृम्णस्य। महना। सः। जनासः। इन्द्रः।।

**अन्वय—**यः प्रथमः मनस्वान् देवः जातः एव ऋतुना देवान् पर्यभूषत् यस्य शुष्मात् रोदसी अभ्यसेताम्, जनासः! नृम्णस्य महना सः इन्द्रः।

**शब्दार्थ—**यः जो, जिसने। प्रथमः प्रधान, प्रमुख। मनस्वान् मनस्वी, बुद्धिमान्। देवः देव ने। जातः एव उत्पन्न होते ही। ऋतुना पराक्रम से, शक्ति से, कर्म से। देवान् देवों की। पर्यभूषत् अभिभूत कर लिया, अतिक्रमण किया। यस्य जिसकी। शुष्मात् बल से, शक्ति से, पराक्रम से। रोदसी द्युलोक और पृथ्वी—लोक। अभ्यसेताम् डर गये, काँप गये। जनासः हे मनुष्यो। नृम्णस्य महान् बल की। महना महिमा से, महत्त्व से (युक्त)। सः वह। इन्द्रः इन्द्र।

**अनुवाद—** जिस प्रमुख (एवं) मनस्वी देव ने उत्पन्न होते ही (अपने) पराक्रम से देवों को अभिभूत कर लिया। (अथवा देवताओं का अतिक्रमण किया), जिसकी शक्ति से द्युलोक और पृथ्वीलोक काँप गये, हे लोगो! महान् बल की महिमा से युक्त वह (ही) इन्द्र है।

यः पृथिवीं व्यथमानामादृहत् यः पर्वताप्रन्कुपितां अरम्णात्।

यो अन्तरिक्षं विममे वरीयो यो द्यामस्तभ्नात्स जनास इन्द्रः।।2।।

**पदपाठ—** यः। पृथिवीम्। व्यथमानाम्। अदृहत्। यः। पर्वतान्। प्रऽकुपितान्। अरम्णात्। यः। अन्तरिक्षम्। विऽममे। वरीयः। यः। द्याम्। अस्तभ्नात्। सः। जनासः। इन्द्रः।।

**अन्वय—** यः व्यथमानां पृथिवीम् अदृहत्, यः प्रकुपितान् पर्वतान् अरम्णात्, यः वरीयः अन्तरिक्षम् विममे, यः द्याम् अस्तभ्नात्, जनासः सः इन्द्रः।

**शब्दार्थ—**यः जिसने। व्यथमानाम् काँपती हुई, डगमगाती हुई। पृथिवीम् पृथ्वी को। अदृहत् दृढ़ किया, स्थिर किया। यः जिसने। प्रकुपितान् इधर—उधर उड़ने वाले, इधर—उधर चलने वाले। पर्वतान् पर्वतों को। अरम्णात् नियमित किया, स्थापित किया। यः जिसने। वरीयः विस्तृत। अन्तरिक्षम् अन्तरिक्ष

को। विममे ऋ विशेष रूप से नापा, निर्माण किया। यःऋ जिसने। घाम् द्युलोक को। अस्तभ्नात् ऋ रोका, निरुद्ध किया, थामा। जनासः ऋ हे लोगो, मनुष्यो। सः ऋ वह। इन्द्रः ऋ इन्द्र।

**अनुवाद**—जिसने काँपती हुई (डगमगाती हुई) पृथ्वी को स्थिर किया, जिसने उड़ने वाले पर्वतों को (अपने-अपने स्थान पर) स्थापित किया, जिसने विस्तृत अन्तरिक्ष को मापा (अथवा विस्तृत अन्तरिक्ष का निर्माण किया), जिसने द्युलोक को (गिरने से) रोका (अथवा द्युलोक को थामा) हे लोगो! वह इन्द्र है।

**यो हत्वाहि मरिणात्सप्त सिन्धू न्योगा उदाजदपधा वलस्य।**

**यो अश्मनोरन्तरग्निं जजान। संवृक्समत्सु स जनास इन्द्रः।।3।।**

**पदपाठ**— यः। हत्वा। अहिम्। अरिणात्। सप्त। सिन्धून्। यः। गाः उत्सआजत्। अपस्था। वलस्य। यः। अश्मनोः। अन्तः। अग्निम्। जजान। समवृक्। समत्सु। सः। जनासः। इन्द्रः।

**अन्वय**—यः अहिं हत्वा सप्तसिन्धून् अरिणात्, यः वलस्य अपधा गाः उदाजत्, यः अश्मनोः अन्तः अग्निं जजान्, समत्सु सवृक् जनासः! सः इन्द्रः।

**शब्दार्थ**—यः ऋ जिसने। अहिम् ऋ वृत्र नामक असुर को जल को रोकने वाले मेघ को। हत्वा ऋ मार कर। सप्त ऋ सात। सिन्धून् ऋ नदियों को। अरिणात् ऋ प्रवाहित किया, बहाया। यःऋ जिसने। बलस्यऋ वल नामक असुर (वलासुर) की। अपधा ऋ गुफा से, बाड़े से। गाः ऋ गायों को। उदाजत् ऋ बाहर निकाला। यःऋ जिसने। अश्मनोः ऋ बादलों के, पत्थरों के। अन्तः ऋ मध्य में। अग्निम् ऋ अग्नि को। जजान ऋ उत्पन्न किया। समत्सु ऋ युद्धों में। संवृक् ऋ विनाश करने वाला, संहार करने वाला। जनासः ऋ हे लोगो ! सः ऋ वह। इन्द्रः ऋ इन्द्र।

**अनुवाद**—जिसने वृत्र को मार कर सात नदियों को प्रवाहित किया, जिसने वल नामक असुर की गुफा से गायों को बाहर निकाला, जिसने दो बादलों (अथवा पत्थरों) के मध्य में अग्नि को उत्पन्न किया, जो युद्धों में (शत्रु का) विनाश करने वाला है, हे लोगो! वह इन्द्र है।

**येन मा विश्वा च्यवना कृतानि यो दास वर्णमधरं गुहाकः।**

**श्वघ्नीव यो जिगीवां लक्षमाददर्यः पुष्टानि स जनास इन्द्रः।।4।।**

**पदपाठ**— येन। इमा विश्वा। च्यवना। कृतानि। यः। दासम्। वर्णम्। अधरम्। गुहा। अकरित्यकः। श्वनीऽइव। यः। जिगीवान्। लक्षम्। आदत्। अर्यः। पुष्टानि। सः। जनासः। इन्द्रः।

**अन्वय**—येन इमा विश्वा च्यवना, कृतानि, यः अधरम् दासम् वर्णम् गुहा अकः, यः श्वघ्नीव लक्षम् जिगीवान्, सः अयं पुष्टानि आदत्, जनासः। सः इन्द्रः।

**शब्दार्थ**— येन ऋ जिसके द्वारा। इमा ऋ ये। विश्वा ऋ सम्पूर्ण। च्यवना ऋ गतिशील, नश्वर। कृतानि। कर दी गयी। यःऋ जिसने। अधरम् ऋ निकृष्ट, नीच। दासम्, वर्णम् ऋ दास (शूद्र) वर्ण को, दास जाति को। गुहा ऋ गुफा में, गूढ़ स्थान में, अकः ऋ कर दिया। यःऋ जिसने। श्वघ्नीव ऋ व्याध (शिकारी) की भाँति, जुआरी की

भाँति। लक्षम् त्र लक्ष्य को, दाँव को। जिगीवान त्र जीते हुए, जीतकर। अर्यः त्र शत्रु के। पुष्टानि त्र धनों को। आदत् त्र गृहण किया, छीन लिया। जनासः त्र हे लोगो! सः त्र वह। इन्द्रः त्र इन्द्र।

**अनुवाद—** जिसके द्वारा ये सम्पूर्ण (वस्तुयें) गतिशील कर दी गयी हैं। जिसने निकृष्ट दास वर्ण को गुफा (या नरक) में कर दिया, अपने शिकार को जीत लेने वाले शिकारी की भाँति (या दाँव को जीत लेने वाले जुआरी की भाँति) जिसने शत्रु के धनों को छीन लिया है, हे लोगो! वह इन्द्र है।

यं स्मा पृच्छन्ति कुहसेति घोरम तेमाहर्नेषो अस्तीत्ये नम्।

सी अर्यः पुष्टीर्विज इवामिनाति श्रदस्मै धत्त स जनास इन्द्रः ॥5॥

**पदपाठ—** यम्। स्म् पृच्छन्ति। कुह। सः। इति। घोरम्। उत। ईम्। आहुः। न। एषः। अस्ति। एनम्। सः। अर्यः। पुष्टीः। विजःऽइव। आ। मिनाति। श्रत्। अस्मै। धत्त। सः। जनासः। इन्द्रः॥

**अन्वय—** य घोरम् सः कुह इति पृच्छन्ति उत ईम् एनम् एषः न अस्ति इति आह सः विजः इव अयं पुष्टीः आमिनाति अस्मै श्रत् धत्त, जनासः! सः इन्द्रः।

**शब्दार्थ—** यम् घोरम् त्र जिस भयंकर (देवता) के विषय में। सः त्र वह। कुह त्र कहाँ। इति त्र ऐसा, इस प्रकार। पृच्छन्ति त्र पूछते हैं। उत त्र और। ईम् त्र पाद की पूर्ति हेतु निपात। एनम् त्र जिसके (इसके) विषय में। एषः त्र यह। न त्र नहीं। अस्ति त्र है। इति त्र ऐसा, इस प्रकार। आहुः त्र कहते हैं। सः त्र वह। विजः इव त्र विजेता की भाँति, जुआरी की तरह। अर्यः त्र शत्रु के। पुष्टीः त्र धन का, सम्पत्ति को। आ मिनाति त्र नष्ट कर देता है, छीन लेता है। अस्मै त्र इसके लिए, इसमें! श्रत् त्र श्रद्धा। धत्त त्र धारण करो। जनासः त्र हे मनुष्यो! सः त्र वह। इन्द्रः त्र इन्द्र है।

**अनुवाद—**जिस भयंकर (देवता) के विषय में भवह कहाँ है?" ऐसा (लोग) पूछते हैं, और जिसके विषय में भयह नहीं है" इस प्रकार (भी) लोग कहते हैं, वह (देवता) विजेता की भाँति शत्रु के धन को पूर्णतः नष्ट कर देता है, बलपूर्वक छीन लेता है, हे लोगो! वह इन्द्र है। इसमें श्रद्धा धारण करो।

यो रधस्य चोदिता यः कृशस्य यो ब्रह्मणो नाधमानस्यकीरेः।

युक्तग्राव्यो योऽविता सुशिप्रः स तसोमस्य स जनास इन्द्रः ॥6॥

**पदपाठ—**यः। रधस्य। चोदिता। यः। कृशस्य। ब्रह्मणः। नाधमानस्य। कीरेः॥ युक्तऽग्राव्यः। यः। अविता। सुऽशिप्रः। सुतऽसोमस्य। सः। जनासः। इन्द्रः॥

**अन्वय—** यः रधस्य चोदिता, यः कृशस्य, यः नाधमानस्य कीरे ब्रह्मण सुशिप्रः, यः युक्तग्राव्य सोमस्य अविता, जनास सः इन्द्रः।

**शब्दार्थ—**यः त्र जो। रधस्यत्र समृद्ध का धनवान् का। चोदिता त्र प्रेरक, प्रेरणा देने वाला। यःत्र जो। कृशस्यत्र दरिद्र, का निर्धन का। यःत्र जो नाधमानस्यत्र याचना करने वाले। कीरे त्र स्तुति करने वाले का, स्तुतिगायक का। ब्रह्मणः त्र पुरोहित का। सुशिप्रः त्र सुन्दर हनु (ठोड़ी) वाला, सुन्दर ओष्ठ वाला, सुन्दर बालों



वाला। यः ऋ जो। युक्तगाव्यः ऋ पत्थरों को तैयार किये हुए का पत्थरों को संयोजित करने वाले का। सुनसोमस्यऋ सोम रस को निचोड़ने वाले का, सोम को पीस लेने वाले का। अविता ऋ रक्षक। जनासः ऋ हे लोगो। स ऋ वह। इन्द्रः ऋ इन्द्र।

**अनुवाद**—जो समृद्धिशाली व्यक्ति का प्रेरक है, जो निर्धन का (प्रेरक है), जो याचना करने वाले तथा स्तुति करने वाले पुरोहित का (प्रेरक) है। सुन्दर हनु वाला (अथवा सुन्दर ओष्ठ वाला) जो (सोम पीसने के लिए) पत्थरों को तैयार करने वाले तथा सोम रस को निचोड़ने वाले (यजमान का रक्षक है), हे लोगो! वह इन्द्र है।

**यस्याश्वासः प्रदिशि यस्य गावो यस्य ग्रामा यस्य विश्वे रथासः।**

**यः सूर्यम् य उषस जजान यो अपानेता स जनास इन्द्रः॥७॥**

**पदपाठ**— यस्य। अश्वासः। प्रदिशि। यस्य। गावः। यस्य। ग्रामाः। यस्य। विश्वे। रथासः। यः। सूर्यम्। यः। उषसम्। जजान। यः। अपाम्। नेता। सः। जनासः। इन्द्रः।।

**अन्वय**— यस्य प्रदिशि अश्वासः, यस्य गावः यस्य ग्रामः, यस्य विश्वे रथासः, यः सूर्यम्, यः उषसम् जजान्, यः अपाम् नेता, जनासः! सः इन्द्रः।

**शब्दार्थ**— यस्यऋ जिसके। प्रदिशि ऋ अनुशासन में, आज्ञा से। अश्वासः ऋ घोड़े। यस्यऋ जिसके। गावः ऋ गायें। यस्यऋ जिसके। ग्रामः ऋ ग्राम, गाँव। यस्यऋ जिसके। विश्वे ऋ सम्पूर्ण। रथासः ऋ रथ। यःऋ जो। सूर्यम् ऋ सूर्य को। यःऋ जो। उषसम् ऋ उषा को। जजान ऋ उत्पन्न किया। यःऋ जो। अपाम् ऋ जलों का। नेता ऋ ले आने वाला, बरसाने वाला। जनासः ऋ हे लोगो! सः ऋ वह। इन्द्रः ऋ इन्द्र।

**अनुवाद**— जिसके अनुशासन (आज्ञा) में घोड़े हैं, जिसके (अनुशासन में) गायें हैं, जिसके (अनुशासन में) ग्राम हैं, जिसके (अनुशासन में) सम्पूर्ण रथ हैं, जिसने सूर्य को (उत्पन्न किया है), जिसने उषा को उत्पन्न किया है, जो (बादलों में से) जलों को लाने वाला (बरसाने वाला) है, हे लोगो! वह इन्द्र है।

**यं क्रन्दसी संयती विह्वयेते परेऽवर उभया अमित्रा।**

**समानं चिद्रथमातस्थिवाता नाना हवेत् स जनास इन्द्रः॥८॥**

**पदपाठ**—यम्। क्रन्दसी इति। संयती इति सम्ऽयती विह्वेत् इति विऽह्वयेते। परे। अवरः। उभयाः। अमित्राः। समानम्। चित्। रथम्। आत्स्थिऽवांसा। नाना। हवेते इति। सः। जनासः। इन्द्रः।।

**अन्वय**—क्रन्दसी संयती यम् विह्वयेते, परे अवरः उभयाः अमित्राः समानम् रथम् अतिस्थिवांसा नाना हवेते, जनास! सः इन्द्रः।

**शब्दार्थ**—क्रन्दसी ऋ शब्द (क्रन्दन) करती हुई, सिंहनाद करती हुई, जोर-जोर से चिल्लाती हुई। संयती परस्पर युद्ध करती हुई, एक साथ गमन करती हुई। यम् ऋ जिसकी। विह्वयेते ऋ विविध प्रकार से आहवान् करती हुई बुलाती है, पुकारती है। परे ऋ उत्कृष्ट, शक्तिशाली, बलवान्। अवरः ऋ निम्न श्रेणी के, निर्बल।

उभयाः त्रदोनों, दोनों ओर के। अमित्राः त्र शत्रु। समानम् त्र सदृश, एक ही प्रकार के, एक। रथम् त्र रथ पर। आतस्थिवांसा त्र बैठे हुए। नाना त्र अनेक प्रकार से, विभिन्न प्रकार से, पृथक्-पृथक्। हवेते त्र आहवान् करते हैं, बुलाते हैं। जनासः त्र हे मनुष्यो ! सः त्र वह। इन्द्रः त्र इन्द्र।

**अनुवाद—** सिंहनाद करती हुई तथा परस्पर युद्ध करती हुई (शत्रुओं की सेनायें) जिस देवता को विविध प्रकार से पुकारती हैं, (जिसको) बलवान् एवं निर्बल दोनों प्रकार के शत्रु (अपनी सहायता के लिए) बुलाते हैं, जिसको एक ही प्रकार के रथ पर बैठे हुए (दो योद्धा) (अथवा एक ही रथ पर बैठे हुए सारथि तथा योद्धा) विभिन्न प्रकार से बुलाते हैं, हे लोगो! वह इन्द्र है।

**यस्मान्न ऋते विजयन्ते, जनासो यं युध्यमाना अवसे हवन्ते।**

**यो विश्वस्य प्रतिमानं वभूव यो अच्युतच्युत्स जनास इन्द्रः।।9।।**

**पदपाठ—** यस्मात्। न। ऋते। विजयन्ते। जनासः। यम्। युध्यमानाः। अवसे। हवन्ते। यः। विश्वस्य। प्रतिमानम्। वभूव। यः। अच्युतच्युत्। सः। जनासः। इन्द्रः।।

**अन्वय—** यस्मात् ऋते जनासः न विजयन्ते, युध्यमानाः, अवसे यं हवन्ते, यः विश्वस्य प्रतिमानम् वभूव, यः अच्युतच्युत् जनासः! सः इन्द्रः।

**शब्दार्थ—**यस्मात् त्र जिसके। ऋत त्र बिना। जनासः त्र लोग। न त्र नहीं। विजयन्ते त्र विजय प्राप्त करते हैं। युध्यमानाः त्र युद्ध करते हुए। अवसे त्र रक्षा के लिए। यम् त्र जिसकी। हवन्ते त्र आहवान् करते हैं, बुलाते हैं। यः त्र जो। विश्वस्य त्र सबका, सम्पूर्ण जगत् का। प्रतिमानम् त्र प्रतिनिधि, मार्गप्रदर्शक, रक्षक। वभूव त्र है, हो गया है। यः त्र जो। अच्युतच्युत् त्र अचल को चल बना देने वाला, स्थिर को गतिमान् (चलायमान) कर देने वाला, क्षयरहित को विनष्ट करने वाला। जनासः त्र हे मनुष्यो! सः त्र वह। इन्द्रः त्र इन्द्र।

**अनुवाद—**जिसके बिना (अर्थात् जिसकी सहायता के बिना) लोग विजय नहीं प्राप्त करते हैं, युद्ध करते हुए (लोग) रक्षा के लिए जिसको बुलाते हैं, जो सम्पूर्ण लोगों का प्रतिनिधि (रक्षक, मार्ग-प्रदर्शक) है, जो अचल (पदार्थों) को चल बना देने वाला (अथवा जो स्थिर को भी अस्थिर कर देने वाला) है, हे लोगो! वह इन्द्र है।

**यः शश्वतो मद्घेनो दधानानमन्यमानांशर्वा जघान।**

**यः शर्धते नानुददाति शृध्यां यो दस्योर्हन्ता स जनास इन्द्रः।।10।।**

**पदपाठ—**यः। शश्वतः। महि। एनः। दधानान्। अमन्यमानान्। शर्वा। जघान। यः। शर्धते। न। अनुददाति। शृध्याम्। यः। दस्योः। हन्ता। सः। जनासः। इन्द्रः।।

**अन्वय—**यः महि एनः दधानान् अमन्यमानान् शश्वतः शर्वा जघान, यः शर्धते शृध्याम् न अनुददाति, यः दस्योः हन्ता, जनासः! सः इन्द्रः।

**शब्दार्थ—** यः जिसने। महि त्र महान् बड़े, भारी। एनः पाप को। दधानान् धारण करने वाले। अमन्यमानान् त्र अपमान करने वाले, (इन्द्र को) न मानने वाले, इन्द्र की सत्ता में विश्वास न करने वाले। शाश्वतः त्र अनेक, बहुत। शर्वा त्र वज्र से। जघान त्र मार डाला। यः जो। शर्धते त्र हिंसा करने वाले, दर्पयुक्त। शृध्याम् त्र हिंसा से युक्त कर्म, दर्प। न त्र नहीं। अनुददाति त्र सहन करता है, क्षमा करता है। यः जो। दस्योः त्र दस्यु का, असुर का। हन्ता त्र वध करने वाला, मरने वाला। जनासः त्र हे मनुष्यो! सः त्र वह। इन्द्रः त्र इन्द्र।

**अनुवाद—** जिसने महान् पाप को धारण करने वाले तथा अपमान करने वाले बहुत से (व्यक्तियों) को वज्र से मार डाला, जो दर्पयुक्त (व्यक्ति) के दर्प को सहन नहीं करता है, जो असुर का वध करने वाला है, हे मनुष्यो! वह इन्द्र है।

**यः शम्बरं पर्वतेषु क्षियन्तं चत्वारिंश्यां शरद्यन्वविन्दत्।**

**ओजायमानं यो अहिं जघान दानुं शयानं स जनास इन्द्रः॥11॥**

**पदपाठ—** यः। शम्बरम्। पर्वतेषु। क्षियन्तम् चत्वारिंश्याम्। शरदि। अनुऽअविन्दत्। ओजायमानम्। यः। अहिम्। जघान। दानुम्। शयानम्। सः। जनासः। इन्द्रः॥

**अन्वय—**यः पर्वतेषु क्षियन्तं शम्बरं चत्वारिंश्यां शरदि अन्वविन्दत्, यः ओजायमानं शयानं दानुम् अहिं जघान्, जनासः! सः इन्द्रः।

**शब्दार्थ—**यः जिसने। पर्वतेषु त्र पर्वतों पर। क्षियन्तम् त्र निवास करते हुए। शम्बरम् त्र शम्बर (नामक असुर) को। चत्वारिंश्याम् त्र चालीसवें। शरदि त्र शरद् (वर्ष) में। अन्वविन्दत् त्र प्राप्त किया, खोज निकाला। यः त्र जिसने। ओजायमानम् त्र ओज (बल) को प्रदर्शित करते हुए, पराक्रम का प्रदर्शन करने वाले। शयानम् त्र लेटे हुए। दानुम् त्र दनु के पुत्र को। अहिम् त्र अहि को। जघान त्र मार डाला। जनासः त्र हे लोगो! सः त्र वह। इन्द्रः त्र इन्द्र।

**अनुवाद—**जिसने पर्वतों पर निवास करते हुए शम्बर (नामक असुर) को चालीसवें वर्ष में खोज निकाला, जिसने ओज (बल) का प्रदर्शन करते हुए तथा (जल को घेर कर) लेटे हुए दनु-पुत्र (दानव) अहि को मार डाला, हे लोगो! वह इन्द्र है।

**यःसप्तरश्मिर्वृषभस्तुविष्णानवासूर्जत्सर्तं वे सप्त सिन्धून्।**

**यो रौहिणमस्फुरद्बज्रबाहुर्दामारोहन्तं स जनास इन्द्रः॥12॥**

**पदपाठ—**यः। सप्तरश्मिः। वृषभ। तुविष्णान्। अवऽअसृजत्। सर्तवे। सप्त। सिन्धून्। यः। रौहिणम्। अस्फुरत्। वज्रऽबाहुः। द्याम्। आऽरोहन्तम्। सः। जनासः। इन्द्रः॥

**अन्वय—**सप्तरश्मिः वृषभः तुविष्णान् यः सप्त सिन्धून् सर्तवे अवासृजत्, यः वज्रबाहुः द्याम् आरोहन्त रौहिणम् अस्फुरत्, जनासः! सः इन्द्रः।

**शब्दार्थ**— सप्तरश्मिः त्र सात किरणों वाले, सात मेघों (पर्जन्यों) से समन्वित। वृषभः त्र वर्षा करने वाले, कामना की पूर्ति करने वाले। तुविष्मान त्र बलवान्। यःत्र जिसने। सप्त त्र सात। सिन्धून् त्र नदियों को। सर्तवे त्र बहने के लिए। अवासृजत् त्र मुक्त किया, विसर्जित किया, छोड़ा। यःत्र जो। वज्रबाहुः त्र हाथ में वज्र को धारण करने वाला, वज्र के समान हाथों वाला। द्याम त्र द्युलोक में। आरोहन्तम् त्र आरोहण करते हुए, चढ़ते हुए। रौहिणम् त्र रौहिण (नामक असुर) को। अस्फुरत्त्र मार डाला। जनासः त्र हे लोगो! सः त्र वह। इन्द्रः त्र इन्द्र।

**अनुवाद**—सात किरणों वाले (अथवा सात मेघों से समन्वित), वर्षा करने वाले (अथवा कामना की पूर्ति करने वाले) और बलशाली जिस (देवता) ने सात नदियों को बहने के लिए प्रवाहित किया, हाथ में वज्र को धारण करने वाले (अथवा हाथ में वज्र को उठाकर) जो द्युलोक में चढ़ते हुए रौहिण (नामक असुर) को मार डाला, हे लोगो! वह इन्द्र है।

**द्यावा चिदस्मै पृथिवी नमेते शुष्माच्चिदस्य पर्वता भयन्ते।।**

**यः सोमपा निचितो वज्रबाहु र्योवज्रहस्तः स जनास इन्द्रः।।13।।**

**पदपाठ**—द्यावा। चित्। अस्मै। पृथिवी इति। नेमते इति। शुष्मात्। चित्। अस्य। पर्वताः। भयन्ते।। यः। सोमऽपाः। निऽचितः। वज्रऽबाहुः। यः। वज्रऽहस्तः। सः। जनासः। इन्द्रः।।

**अन्वय**—अस्मै द्यावापृथिवी चित् नमते, अस्य शुष्मात् पर्वताः चित् भयन्ते, यः वज्रबाहु निचितः सोमपाः, यः वज्रहस्तः, जनासः! सः इन्द्रः।

**शब्दार्थ**—अस्मै त्र इसके लिए, इसके समक्ष। द्यावा त्र द्युलोक। पृथिवी त्र पृथिवीलोक। चित् त्र भी। नमेते त्र झुक जाते हैं। अस्यत्र इसके। शुष्मात् त्र बल से, पराक्रम के सामने। पर्वताः त्र पर्वत। चित् त्र भी। भयन्ते त्र डर जाते हैं। यःत्र जो। वज्रबाहुः त्र वज्र के समान (कठोर) भुजाओं वाला। निचितः त्र प्रसिद्ध, विख्यात्। सोमपा त्र सोम का पान करने वाला, सोमपायी। यःत्र जो। वज्रहस्तः त्र हाथ में वज्र को धारण करने वाला। जनासः त्र हे लोगो! सः त्र वह इन्द्रः त्र इन्द्र।

**अनुवाद**—इस (जिस) के समक्ष द्युलोक (आकाश) तथा पृथिवी भी झुक जाते हैं, इसके (जिसके) पराक्रम के सामने पर्वत भी डर जाते हैं, जो वज्र के समान (कठोर) भुजाओं वाला, प्रसिद्ध सोम-पान-कर्ता (सोमपायी) है, जो हाथ में वज्र को धारण करने वाला है, हे लोगो! वह इन्द्र है।

**यः सुन्वन्तमवति यः पचन्तं यः शसन्तं वः शशमानसूती।**

**यस्य ब्रह्म वर्धनं यस्य सोमो यस्ये दं राधः स जनास इन्द्रः।।14।।**

**पदपाठ**—यः। सुन्वन्तम्। अवति। यः। पचन्तम्। यः। शसन्तम्। यः। शशमानम्। ऊती। यस्य। ब्रह्म। वर्धनम्। यस्य। सोमः। यस्य। इदम्। राधः। सः। जनासः। इन्द्रः।।

**अन्वय**—यः सुन्वन्तम् अवति, यः पचन्तम् यः ऊती शंसन्तम्। यः शशमानम् अवति, ब्रह्म यस्य वर्धनम्, सोमः यस्य, यस्य इदं राधः, जनासः। सः इन्द्रः।

**शब्दार्थ—** यःत्र जो। सुवन्तम् त्र सोम रस को निकालते हुए की, सोम रस को निचोड़ते हुए की। यःत्र जो। ऊती त्र रक्षा के लिए। शसन्तम् त्र स्तुति करते हुए की। यःत्र जो। शशमानम् त्र स्तोत्र—पाठ करते हुए की। अवति त्र रक्षा करता है। ब्रह्म त्र स्तोत्र। यस्यत्र जिसकी। वर्धनम् त्र वृद्धि करने वाला। सोमः त्र सोम यस्यत्र जिसकी। इदम् त्र यह। राघः त्र पुरोडाश आदि अन्न, धन। जनासः त्र हे मनुष्यो, लोगो! सः त्र वह। इन्द्रः त्र इन्द्र।

**अनुवाद—** जो (देवता) सोम रस को निचोड़ते हुए (व्यक्ति) की रक्षा करता है, जो (हवि को) पकाते हुए (व्यक्ति) की, जो (अपनी) रक्षा के लिए (देव) स्तुति करते हुए (व्यक्ति) की, जो स्तोत्र—पाठ करते हुए (व्यक्ति) की (रक्षा करता है), स्तोत्र जिसकी वृद्धि करने वाला है, पुरोडाश आदि अन्न जिसकी वृद्धि करने वाला है, हे लोगो! वह इन्द्र है।

**यः सुन्वते पचते दुध्र आ चिद्वाज दर्दर्षि स किलासि सत्यः॥**

**वयं त इन्द्र विश्वह प्रियासः सुवीरासो विदथमा वदेम॥15॥**

**पदपाठ—**यः सुन्वते। पचते। दुध्रः। आ। चित्। वाजम्। दर्दर्षि। सः। किल। असि। सत्यः। वयम्। ते। इन्द्र। विश्वह। प्रियासः। सः। सुवीरासः। विदथम्। आ। वदेम॥

**अन्वय—**दुध्रः यः सुन्वते पचते वाजम् आ दर्दर्षि, सः किल सत्यः असि, इन्द्र ते प्रियासः वयं विश्वह विदथम् आवेदम।

**शब्दार्थ—**दुध्रः त्र दुर्धर, भयानक। यःत्र जो। सुन्वते त्र निचोड़ने वाले के लिए, सोम रस निकालते हुए (व्यक्ति) के लिए। पचते त्र (हवि को) पकाने वाले के लिए। वाजम् त्र अन्न, धन, बल आ दर्दर्षि त्र पुनः पुनः प्रदान करते हो। सः त्र वह। किल त्र निश्चित रूप से। सत्यःत्र सत्य, यथार्थ। असि त्र हो। इन्द्रः त्र हे इन्द्रः! ते त्र तुम्हारे। प्रियासः त्र प्रिय। वयम् त्र हम लोग। विश्वह त्र सभी दिनों में, सर्वदा। सुवीरासः त्र उत्तम पुत्र—पौत्रों से युक्त होते हुए। विदथम् त्र स्तोत्र, स्तुति। आवेदम त्र बोलें, गायें।

**अनुवाद—**(हे इन्द्र!) जो भयानक (तुम) (सोम रस को) निचोड़ते हुए (व्यक्ति) के लिए तथा (हवि) पकाने वाले के लिए अन्न (अथवा धन) को बार—बार प्रदान करते हो वह (तुम) निश्चित रूप से सत्य हो। हे इन्द्र! तुम्हारे प्रिय हम लोग सभी दिनों में (सर्वदा) उत्तम पुत्र—पौत्रों से युक्त होकर (तुम्हारे लिए) स्तोत्र—गान करें।

### 1.6 उषःसूक्त— (ऋग्वेद 7।77)

(ऋषि—वशिष्ठ, देवता उषा, छन्द—त्रिष्टुप)

**उपो रुरुचे युवतिर्न योषा विश्वं जीवं प्रसुवन्ती चरायै॥**

**अभूदग्निः समिधे मानुषाणामकज्यो तिर्बाधमाना तमांसि॥1॥**

**पदपाठ—**उपो इति। रुरुचे। युवतिः। न। योषा। विश्वम्। जीवम्। प्रसुवन्ती। चरायै। अभूत्। अग्निः। समऽइधे। मानुषाणाम्। अकः। ज्योतिः। बाधमाना। तमांसि॥

**अन्वय**—विश्वं जीवं चरायै प्रसुवन्ती युवतिः योषा न उपो रुरुचे। अग्निः मानुषाणां समिधे अभूत्, तमांसि बाधमाना ज्योतिः अकः।

**शब्दार्थ**—विश्वन् ३ सब, सम्पूर्ण। जीवम् ३ जीवों को, प्राणियों को। चरायै ३ विचरण (संचरण) करने के लिए, चलने-फिरने के लिए, कर्म (कार्य) करने के लिए। प्रसुवन्ती ३ प्रेरित करती हुई। युवतिः योषा न ३ युवती स्त्री (प्रेमिका) के समान। उपो रुरुच ३ (सूर्य के) समीप में प्रकाशित हुई है। अग्निः मानुषाणाम् ३ अग्नि मनुष्यों के (लिए)। समिधे ३ प्रज्वलित करने के लिए, जलाने के लिए अभूत् ३ हुआ, हो गया। तमांसि बाधमाना ३ अन्धकार को बाधित करती हुई, भगाती हुई, दूर करती हुई। ज्योति अकः ३ ज्योति (प्रकाश) कर दी, प्रकाश फैला दिया।

**अनुवाद**—सम्पूर्ण जीवों (प्राणियों) के चलने-फिरने के लिए (कार्य करने के लिए) प्रेरित करती हुई (यह उषा) युवती स्त्री (प्रेमिका) के समान (सूर्य के) समीप में प्रकाशित हुई हैं। (अर्थात् जिस प्रकार युवती स्त्री वस्त्रों और आभूषणों से सुसज्जित होकर पति के समीप सुशोभित होती है, उसी प्रकार उषा सूर्य के समीप चमकी है)। अग्नि मनुष्यों के लिए प्रज्वलित करने अर्थात् जलाने के योग्य हुए, अन्धकार को भगाती हुई (उषा ने) ज्योति कर दी (प्रकाश फैला दिया)।

**विश्वं प्रतीची स प्रथा उदस्थाद्गुशदवासी विभ्रती शुक्रमश्वैत्।**

**हिरण्यवर्णा सुदृशी कसदृग्गवां माता नेत्रयहामरोचि।।2।।**

**पदपाठ**— विश्वम्। प्रतीची। सऽप्रथाः। उत्। अस्थात्। रुशत्। वासः। विभ्रती। शुक्रम। अश्वैत्। हिरण्यऽवर्णा। सुदृशी कऽसंदृक्। गवाम्। माता। नेत्री। अहवाम्। अरोचि।।।

**अन्वय**— विश्वं प्रतीची सप्रथाः उत् अस्थात्, रुशत् शुक्रम् वासः विभ्रती अश्वैत्। हिरण्यवर्णा सुदृशीकसंदृक् गवां माता अह्वां नेत्री अरोचि।

**शब्दार्थ**— विश्वं प्रतीची ३ संसार के सम्मुख, सभी के सम्मुख। सप्रथाः ३ विस्तार के साथ, बहुत विस्तृत होकर, सभी ओर फैली हुई। उत् अस्थात् ३ ऊपर को उठी है, उठ खड़ी है। रुशत् ३ चमकता हुआ, चमकीला। शुक्रम् ३ शुभ्र, तेजोमय, श्वेत। वासः ३ वस्त्र। विभ्रती ३ धारण करती हुई, पहनती हुई। अश्वैत् ३ प्रकाशित हुई है, चमकी है। हिरण्यवर्णा ३ सुवर्ण (सोने) के रंग वाली, सुनहरे रंग की। सुदृशीकसंदृक् ३ सुन्दरमुखी, सुन्दर मुख वाली, दर्शनीय तेज वाली। गवां माता ३ गायों की (या सूर्य की किरणों की या वाणी की) माता या (निर्माण करने वाली)। प्रातःकाल ही गायें चरने के लिए निकलती हैं, सूर्य की किरणें भी निकलती हैं, पक्षी, मनुष्य आदि की वाणी निकलती है। अह्वां नेत्री ३ दिनों का नेतृत्व करने वाली, दिनों को ले जाने वाली, दिन करने वाली। अरोचि ३ प्रकाशित हुई है, चमकी है।

**अनुवाद**—(यह उषा) सम्पूर्ण संसार के सम्मुख (अपने) विस्तार के साथ (अर्थात् बहुत विस्तृत होकर) उठ खड़ी हुई है। चमकीला और शुभ्र वस्त्र पहनकर (यह) प्रकाशित हुई है। सुवर्ण के रंग वाली, सुन्दर मुख

वाली। (अथवा) दर्शनीय तेज वाली), गायों (अथवा किरणों अथवा वाणी) की माता (निर्माण करने वाली) तथा दिनों का नेतृत्व करने वाली (दिन करने वाली) (उषा) चमक गई है। (प्रकाशित हो गयी है)।

**देवानां चक्षुः सुभगा वहन्ती श्वेतं नयन्ती सुदृशीः कमश्वम्।**

**उषा अदर्शि रश्मिभिर्यक्ता चित्रामघा विश्वमनु प्रभूता।।3।।**

**पदपाठ**—देवानाम्। चक्षुः। सुभगा। वहन्ती। श्वेतम्। नयन्ती। सुदृशीकम्। अश्वम्। उषाः। अदर्शि। रश्मिभिः। विऽअक्ता। चित्रऽमघा विश्वम्। अनु। प्रऽभूता।।

**अन्वय**—देवानां चक्षुः वहन्ती सुदृशीकम् श्वेतम् अश्वम् नयन्ती सुभग चित्रमघा उषाः रश्मिभिः विश्वम् अनु प्रभूता अदर्शि।

**शब्दार्थ**—देवानां चक्षुः ३देवताओं के नेत्र (सूर्य) को। वहन्ती ३ लाती हुई। सुदृशीकम् ३सुन्दर। श्वेतम् ३श्वेत, शुभ्र रंग के। अश्वम् ३ अश्व (सूर्य) को। नयन्ती ३ले जाती हुई, नेतृत्व करती हुई। सुभगा ३सुन्दरी, सौभाग्यवती। चित्रामघा ३विचित्र (अद्भुत) घन (मघ) वाली। उषाः ३उषा। रश्मिभिः ३व्यक्ता ३किरणों से अभिव्यक्त (प्रकाशित) होकर। विश्वम् अनु प्रभूता अदर्शि ३सम्पूर्ण (जगत्) को व्याप्त करके (अर्थात् सर्वव्यापक होकर) दिखलाई पड़ रही है।

**अनुवाद**—देवताओं के नेत्र (सूर्य) को लाती हुई, सुन्दर एवं श्वेत अश्व (सूर्य) को (अपने पीछे) ले जाती हुई सुन्दरी (सौभाग्यवती) तथा विचित्र घन वाली उषा (अपनी) किरणों से अभिव्यक्त (प्रकाशित) होकर सम्पूर्ण (जगत्) को व्याप्त करके (अर्थात् सर्वव्यापक रूप में) दिखलाई पड़ रही है।

**अन्तिवामा दूरे अमित्र मुच्छोर्वी गव्यतिमभयं कृधी नः।**

**यावय द्वेष आ भरा वसूनि चोदय राधो गृणते मघोनि।।4।।**

**पदपाठ**—अन्तिऽवामा। दूरे। अमित्रम्। उच्छ। उर्वीम्। गव्यूतिम्। अभयम्। कृधिः। नः। यवय। द्वेषः। आ। भर। वसूनि। चोदय। राधः। गृणते। मघोनि।।

**अन्वय**—अन्तिवामा! अमित्रं दूरे उच्छ, नः उर्वी गव्यूतिम् अभयं कृधि, द्वेषः यावय, वस्तूति आ भर, मघोनि! गृणते राधः चोदय।

**शब्दार्थ**—अन्तिवामा ३(हमारे) समीप में धनों को रखने वाली। अमित्रं दूरे उच्छ ३ शत्रु को दूर (भगाकर) चमको। नः ३ हमको, हमारे लिए। उर्वी गव्यूतिम् ३ विस्तृत भूमि (चारागाह)। अभयं ३ अभय। कृधि ३ करो। द्वेषः ३ द्वेष करने वाले शत्रुओं की। यावय ३ पृथक करो, (हमसे) दूर करो। वसूनि आ भर ३ (उन शत्रुओं के) धनों को (हमारे लिए) ले आओ। मघोनि ३ हे धनवती! गृणते ३ स्तोता (स्तुति करने वाले) के लिए। राधः ३ धन। चोदय ३ प्रेरित करो, भेजो।

**अनुवाद**—हे धन को (हमारे) समीप में रखने वाली (उषा)! शत्रु को दूर (भगाकर) चमको (अपने प्रकाश से शत्रु को दूर भगा दो, ऐसी चमको कि शत्रु भाग जाये)। (हमारे लिए) विस्तृत भूमि (या चरागाह) और अभय

प्रदान करो। द्वेष करने वाले शत्रुओं को (हमसे) पृथक (अर्थात् दूर) कर दो तथा (उन शत्रुओं के) धनों को (हमारे लिए) ले आओ। हे धनवती! स्तोता (स्तुति करने वाले) के लिए धन भेजो।

**अस्मे श्रेष्ठेभिर्भानुभिर्विभाह्यषो देवि प्रतिरन्ती न आयुः।**

**इषं च नो दधती विश्ववारे गोमदश्वा वद्रथवच्च राधः॥५॥**

**पदपाठ**—अस्मे इति। श्रेष्ठेभिः। भानुभिः। वि। भाहि। उषः। देवि प्रऽतिरन्ती। नः। आयुः॥ इषम्। च। नः। दधती। विश्वऽवारे। गोऽमत् अश्वऽवत्। रथऽवत्। च। राधः॥

**अन्वय**— विश्ववारे उषः देवि! नः आयुः प्रतिरन्ती च नः इषं गोमः अश्ववत् रथवत् च राधः दधती अस्मे श्रेष्ठेभिः भानुभिः विभाहि।

**शब्दार्थ**—विश्ववारे उषो देवि ३ हे सभी के द्वारा स्पृहणीय (चाही गयी) उषा देवि! नः आयुः प्रतिरन्ती ३ हमारी आयु को बढ़ाती हुई। च ३ और। इषं गोमत् अश्वत् रथवत् च राधः दधती ३ हमारे लिए अन्न को तथा गायों, अश्वों और रथों से युक्त धन को प्रदान करती हुई। अस्मे ३ हमारे लिए। श्रेष्ठेभिः भानुभिः ३ श्रेष्ठ किरणों से। विभाहि ३ प्रकाशित हो, चमको।

**अनुवाद**— हे सभी के द्वारा स्पृहणीय (चाही गयी) उषा देवि! हमारी आयु को बढ़ाती हुई और हमारे लिए अन्न को तथा गायों, अश्वों और रथों से युक्त धन को प्रदान (धारण) करती हुई तुम हमारे लिए श्रेष्ठ किरणों से प्रकाशित हो ।

**यां त्वा दिवो दुहितर्व धयन्त्युषः सुजाते मतिभिर्वसिष्ठाः।**

**सास्मासु धा रयिमृष्व बृहन्तं यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥६॥**

**पदपाठ**—याम्। त्वा। दिवः। दुहितः। वर्धयन्ति। उषः। सुऽजाते। मतिऽभिः। वसिष्ठाः। सा। अस्मासु। धाः। रयिम्। ऋष्वम्। बृहन्तम्। यूयम्। पात। स्वस्तिऽभिः। सदा। नः॥॥

**अन्वय**—दिवो दुहितः सुजाते उषः! यां त्वा वसिष्ठाः मतिभिः वर्धयन्ति सा अस्मासु ऋष्वं बृहन्तं रयिं धाः, यूयं स्वस्तिभिः सदा नः पात।

**शब्दार्थ**— दिवो दुहितः ३ हे द्युलोक की पुत्री! सुजाते उषः ३ हे सुन्दर जन्म वाली, (उत्तम कुल में उत्पन्न) उषा। यां त्वा ३ जिस तुमको। वसिष्ठाः ३ वसिष्ठ के वंशज, वसिष्ठ कुल के ऋषि। मतिभिः वर्धयन्ति ३ स्तुतियों से बढ़ाते हैं। सा ३ वह तुम। अस्मा सुऽऋष्वं बृहन्तं रयिं धाः ३ हममें उत्तम और महान् धन रखो, हमें उत्तम और महान् धन प्रदान करो। यूयम् ३ तुम लोग। स्वस्तिभिः सदा नः पात ३ (अपने) कल्याणों (आशीर्वादों) से हमारी रक्षा करो।

**अनुवाद**—हे द्युलोक की पुत्री, सुन्दर जन्म वाली उषा! जिस तुमको वसिष्ठ के वंशज (अपनी) स्तुतियों से बढ़ाते हैं, वह तुम हममें उत्तम और महान् धन रखो। (हे देवताओं) तुम (अपने) कल्याणों (आशीर्वादों) से हमारी सदैव रक्षा करो।



## 1.7 पुरुषसूक्त— (ऋ० 10।90)

(ऋषि—नारायण। देवता—पुरुष। छन्द— अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्)

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।

सभूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठदशाङ्गुलम्॥1॥

पदपाठ— सहस्रऽशीर्षा। पुरुषः। सहस्रऽअक्षः। सहस्रऽपात्। सः भूमिम्। विश्वतः। वृत्वा। अति। अतिष्ठत्। दशऽअङ्गु लम्॥

अन्वय—पुरुषः सहस्रशीर्षा सहस्राक्षः सहस्रपात्, सः भूमिं विश्वतो वृत्वा दशाङ्गुलम् अत्यतिष्ठत्।

शब्दार्थ—पुरुषः ऋ परमेश्वर, परमात्मा, आदि पुरुष, परम् पुरुष, विराट् पुरुष। सहस्रशीर्षा ऋ हजार (अनन्त, असंख्य) सिरों वाला। सहस्राक्षः ऋ हजार (अनन्त, असंख्य) आँखों (नेत्रों) वाला। सहस्रपात् ऋ हजार (अनन्त, असंख्य) पैरों वाला। सः ऋ वह। भूमिम् ऋ भूमि को, समग्र ब्रह्माण्ड को। विश्वतो वृत्वा ऋ सभी ओर से (या पूर्ण रूप से) व्याप्त करके अथवा घेरकर अथवा आच्छादित करके। दशाङ्गुलम् ऋ दश अङ्गुल। अत्यतिष्ठत् ऋ अधिक होकर स्थित है।

अनुवाद—परम पुरुष हजार सिरों वाला, हजार आँखों (नेत्रों) वाला और हजार पैरों वाला है। वह पृथिवी (अर्थात् समस्त ब्रह्माण्ड) को सभी ओर से (या पूर्ण रूप से) व्याप्त करके (या घेरकर) दस अङ्गुल (परिणाम में) अधिक होकर स्थित है। (ब्रह्माण्ड से बाहर स्थित है— ब्रह्माण्ड को भीतर और बाहर से व्याप्त किये हुए है)।

पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम्।

उतामृतत्वस्येशा नो यदन्ने नाति रोहति॥2॥

पदपाठ— पुरुषः। एव। इदम्। सर्वम्। यत्। भूतम्। यत्। च। भव्यम्। उत। अमृतऽत्वस्य। ईशानः। अन्नेन। अतिऽरोहति॥

अन्वय— इदं सर्वम् पुरुष एव, यत् भूतम्, यत् च भव्यम्, उत अमृतत्वस्य ईशानः यत् अन्नेन अतिरोहति।

शब्दार्थ—इदम् सर्वम् ऋ यह सब कुछ (दृश्यमान जगत्)। पुरुष एव ऋ पुरुष ही। यत् ऋ जो कुछ। भूतम् ऋ (भूतकाल में) हो चुका है। यत् च ऋ और जो कुछ। भव्यम् ऋ (भविष्य में) होने वाला है। उत ऋ और इसके अतिरिक्त। अमृतत्वस्य ऋ अविनश्वरता का, अमरता का। ईशानः ऋ अधिपति, अधिष्ठाता। यत् ऋ जो। अन्नेन ऋ अन्न से, भोग्य वस्तु से। अतिरोहति ऋ वृद्धि को प्राप्त करता है, बढ़ता है।

अनुवाद— यह सब कुछ (दृश्यमान जगत्) पुरुष ही है (अर्थात् पुरुष का ही रूप है)। जो कुछ हो चुका है और जो कुछ होने वाला है (वह भी सब पुरुष ही है)। इसके अतिरिक्त (पुरुष) अविनश्वरता (अमरता) का अधिपति है, जो अन्न से (भोग्य वस्तु से) वृद्धि को प्राप्त करता है, (उसका भी अधिष्ठाता पुरुष ही है)।

एतावानस्य महिमातो ज्यायाँश्च पूरुषः।

पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतंदिवि ।।3।।

**पदपाठ—** एतावान् । अस्य । महिमा । अतः । ज्यायान् । च । पुरुषः । पादः । अस्य । विश्वा । भूतानि । त्रिऽपात् । अस्य । अमृतम् । दिवि ।।

**अन्वय—**एतवान् अस्य महिमा पुरुषः च अतः ज्यायान्, विश्वा भूतानि अस्य पादः, अस्य त्रिपात्, अमृतं दिवि ।

**शब्दार्थ—**एतावान् त्र इतना, इतनी । अस्यत्र इस (पुरुष) की । महिमा त्र महिमा, ऐश्वर्य । पुरुषः च त्र और पुरुष । अतः ज्यायान् त्र इस (महिमा, ऐश्वर्य) से भी बड़ा । विश्वा भूतानि त्र समग्र प्राणी, समस्त सृष्टि । अस्य पादः त्र उसका चतुर्थ अंश । अस्य त्रिपात् त्र इसका तीन-चतुर्थांश, तीन-चौथाई भाग । अमृत दिवि त्र अमृत रूप से द्युलोक में (है) ।

**अनुवाद—**इतनी इस (पुरुष) की महिमा है और पुरुष इस (महिमा, ऐश्वर्य) से भी बड़ा है । समग्र-प्राणी (समस्त सृष्टि) इसका चतुर्थ अंश मात्र है । उसका तीन-चतुर्थांश अमृत (अविनश्वर) रूप से द्युलोक में अवस्थित है ।

**त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत् पुनः ।**

**ततो विष्वङ् व्यक्रामत् साशनानशनेअभि ।।4।।**

**पदपाठ—** त्रिऽपात् । ऊर्ध्वः । उत् । ऐत् । पुरुषः । पादः । अस्य । इह । अभवत् । पुनरिति । ततः । विष्वङ् । वि । अक्रामत् । साशनानशने इति । अभि ।।

**अन्वय—**त्रिपात् पुरुषः ऊर्ध्वः उदैत्, पुनः अस्य पादः इह अभवत्, ततः साशनानशने अभि विष्वङ् व्यक्रामत् ।

**शब्दार्थ—**त्रिपात् त्र तीन पादों से युक्त, तीन-चौथाई भाग के साथ । पुरुषः त्र पुरुष । ऊर्ध्वः त्र ऊर्ध्ववर्ती या द्युलोकवर्ती । उदैत् त्र ऊपर को उठ गया । पुनः त्र फिर भी । अस्य पादः त्र इस (पुरुष) का एक-चतुर्थ अंश । इह त्र यहाँ । अभवत् त्र हो गया है, रह गया है । ततः त्र उससे । साशनानशने त्र भोजन करने वाला (अर्थात् चेतन वर्ग) और भोजन न करने वाला (अर्थात् अचेतन या जड़ वर्ग) । अभि त्र पर्यन्त । विष्वङ् त्र विविध रूपों वाला, सर्वत्र । व्यक्रामत् त्र व्याप्त हुआ, व्याप्त होकर स्थित है ।

**अनुवाद—**तीन पादों से युक्त (तीन-चौथाई भाग के साथ) पुरुष ऊर्ध्ववर्ती होकर ऊपर को उठा (ऊपर द्युलोक में चला गया) । फिर भी इसका एक-चतुर्थांश यहीं रह गया । वह (पुरुष) भोजन करने वाले (अर्थात् चेतन वर्ग) और भोजन न करने वाले (अर्थात् अचेतन वर्ग) पर्यन्त विविध रूपों में सर्वत्र व्याप्त हो गया ।

**तस्माद् विराट्जायत विराजो अधि पुरुषः ।**

**स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ।।5।।**

**पदपाठ—** तस्मात् । विऽराट् । अजायत । विऽराज । अधि । पुरुषः । सः । जातः । अति । अरिच्यत । पश्चात् । भूमिम् । अथो इति । पुरः ।।

**अन्वय—**तस्मात् विराट् अजायत, विराजः अधिपुरुषः । सः जातः भूमिम् अधोपुरः अत्यरिच्यत ।

**शब्दार्थ—** तस्मात् त्र उस (पुरुष) से। विराट् त्र (परम पुरुष से उत्पन्न) प्रथम तत्त्व व्यक्त जगत्। अजायत त्र उत्पन्न हुआ, आविर्भूत हुआ, उद्भूत हुआ। विराजः त्र विराट् नामक प्रथम तत्त्व के। अधिपुरुषः त्र अधिष्ठाता के रूप में पुरुष, जीवात्मा। सः त्र वह। जातः त्र उत्पन्न होकर। भूमिम् त्र पृथिवी, जगत् के। पश्चात् त्र पीछे। अथो त्र और। पुरः त्र आगे। अत्यरिच्यत त्र अतिक्रमण कर गया, सबसे आगे बढ़ गया।

**अनुवाद—** उस (आदि पुरुष) से विराट् (परम पुरुष से उत्पन्न प्रथम) तत्त्व, व्यक्त जगत्) उत्पन्न हुआ। विराट् (नामक प्रथम तत्त्व, व्यक्त जगत्) के अधिष्ठाता के रूप में पुरुष (जीवात्मा) (उत्पन्न हुआ)। वह उत्पन्न होकर जगत् के पीछे और आगे अतिक्रमण कर गया (अर्थात् सबसे आगे बढ़ गया)।

**यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत ।**

**वसन्तो अस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः ॥6॥**

**पदपाठ—**यत्। पुरुषेण। हविषा देवाः। यज्ञम्। अतन्वत। वसन्तः। अस्य। आसीत्। आज्यम्। ग्रीष्मः। इध्मः। शरत्। हविः॥

**अन्वय—**यत देवाः पुरुषेण हविषा यज्ञम् अतन्वत। अस्य वसन्तः आज्यम् आसीत्, ग्रीष्मः इध्मः, शरत् हविः (चासीत्)।

**शब्दार्थ—**यत त्र जब। देवाः त्र देवताओं, दिव्य शक्तियों ने। पुरुषेण हविषा त्र पुरुष रूप हवि के द्वारा। यज्ञम् त्र यज्ञ को, सृष्टि रूप यज्ञ को। अतन्वत त्र विस्तार किया, सम्पन्न किया। अस्यत्र इस (यज्ञ) का। वसन्तः त्र वसन्त ऋतु। आज्यम् त्र घृत। आसीत् त्र थी। ग्रीष्मः त्र ग्रीष्म ऋतु। इध्मः त्र ईधन, समिधा। शरत् त्र शरद् ऋतु। हविःत्र हवि।

**अनुवाद—** जब देवताओं (दिव्य शक्तियों) ने पुरुषरूप हवि के द्वारा यज्ञ (सृष्टिरूप यज्ञ) को सम्पन्न किया (तब) इस (यज्ञ) का वसन्त ऋतु आज्य (घृत) थी, ग्रीष्म ऋतु (इस यज्ञ का) ईधन (समिधा) थी (और) शरद् ऋतु (इस यज्ञ की) (विशिष्ट) हवि थी। (सामान्य हवि तो पुरुष था ही)।

**तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन्पुरुषं जातमग्रतः ।**

**तेन दे वा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये ॥7॥**

**पदपाठ—** तम्। यज्ञम्। बर्हिषि। प्र। औक्षन्। पुरुषम्। जातम्। अग्रतः। तेन। दे वाः। अयजन्त। साध्याः। ऋषयः। च। ये॥

**अन्वय—** अग्रतः जातम् तम् यज्ञम् पुरुषम् बर्हिषि प्रौक्षन् तेन देवाः ये साध्याः ऋषयः च अयजन्त।

**शब्दार्थ—** अग्रतः त्र सर्वप्रथम। जातम् त्र उत्पन्न, उद्भूत। तम् यज्ञम् त्र उस यज्ञ अर्थात् यज्ञसाधनभूत। पुरुषं त्र पुरुष को। बर्हिषि त्र कुशाओं पर। प्रौक्षन् त्र प्रोक्षण किया, जल से अभिषेक किया। तेन त्र उस (प्रोक्षित

पुरुष) से। देवाः ऋ देवताओं (दिव्य शक्तियों) ने। ये साध्याः ऋ जो प्रजापति आदि सृष्टिकर्ता (थे, उन्होंने)। च  
ऋ और। ऋषयःऋ ऋषियों ने, यज्ञकर्ताओं ने। अयजन्त ऋ यज्ञ (यजन) किया।

**अनुवाद**—सर्वप्रथम उत्पन्न उस यज्ञ साधनभूत (यज्ञीय) पुरुष का (देवताओं ने) कुश पर प्रोक्षण किया (अर्थात् पुरुष को कुश पर रखकर जल छिड़ककर उसे पवित्र किया। उस (प्रेक्षित पुरुष) से देवताओं (दिव्य शक्तियों) ने, जो प्रजापति आदि सृष्टिकर्ता (थे) उन्होंने और (यज्ञकर्ता) ऋषियों ने यज्ञ (यजन) किया।

तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतः संभृतं पृषदाज्यम्।

पशून्तांश्चक्रे वायव्यानारण्यान् ग्राम्याश्च ये।।8।।

**पदपाठ**—तस्मात्। यज्ञात्। सर्वहुतः। सम्भृतम्। पृषत्ऽआज्यम्।। पशून्। तान्। चक्रे। वायव्यान्। आरण्यान्।  
ग्राम्याः। च। ये।।

**अन्वय**—सर्वहुतः तस्मात् यज्ञात् पृषदाज्यम् सम्भृतम्। वायव्यानि आरण्यानि ये च ग्राम्याः तान् चक्रे।

**शब्दार्थ**— सर्वहुतः ऋ जिसमें सभी कुछ होम कर दिया गया ऐसे, जिसमें सर्वात्मक पुरुष को होम किया गया ऐसे। तस्मात् ऋ उससे। यज्ञात् ऋ यज्ञ से। पृषदाज्यम् ऋ दधिमिश्रित घी। सम्भृतम् ऋ इकट्ठा किया गया, उत्पन्न किया गया। वायव्यानि ऋ वायु में विचरण करने वाले, अन्तरिक्ष में विचरण करने वाले। आरण्यानि ऋ वन्य पशुओं को, जंगलों में रहने वाले पशुओं को। ये च ऋ और जो। ग्राम्याः ऋ ग्राम्य पशु, गावों में रहने वाले पशु। तान् ऋ उन्हें। चक्रे ऋ उत्पन्न किया।

**अनुवाद**— जिसमें सभी कुछ होम (हवन) कर दिया गया (जिसमें सर्वात्मक पुरुष को होम किया गया) उस यज्ञ से दधिमिश्रित घृत इकट्ठा किया गया (उत्पन्न किया गया), (उस दधि मिश्रित घृत से उस पुरुष ने) वायु में विचरण करने वाले (पक्षियों, वन्य पशुओं और जो ग्राम्य पशु हैं उन्हें उत्पन्न किया।

तस्माद्यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।

छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत।।9।।

**पदपाठ**— तस्मात्। यज्ञात्। सर्वहुतः। ऋचः। सामानि। जज्ञिरे। छन्दांसि। जज्ञिरे। तस्मात्। यजुः तस्मात्।  
अजायत।।

**अन्वय**— सर्वहुतः तस्मात् यज्ञात् ऋचः सामानि जज्ञिरे, तस्मात् छन्दांसि तस्मात् यजुः अजायत।

**शब्दार्थ**— सर्वहुतः ऋ जिसमें सभी कुछ हवन कर दिया है ऐसे। तस्मात् ऋ उससे। यज्ञात् ऋ यज्ञ से। ऋचः ऋ ऋचाएँ। सामानि ऋ साम। जज्ञिरे ऋ उत्पन्न हुए। तस्मात् ऋ उससे। छन्दांसि ऋ (गायत्र्यादि) छन्द। तस्मात् ऋ उससे। यजुः ऋ यजुष्, यजुर्वेद के मन्त्र। अजायत ऋ उत्पन्न हुए।

**अनुवाद**— जिसमें सभी कुछ होम कर दिया गया (अथवा जिसमें सर्वात्मा पुरुष को होम किया गया) ऐसे उस यज्ञ से ऋचायें (ऋग्वेद के मन्त्र) तथा साम (सामवेद के मन्त्र) उत्पन्न हुए, उससे (गायत्र्यादि) छन्द उत्पन्न हुए और उससे यजुष् (यजुर्वेद के मन्त्र) उत्पन्न हुए।

तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः ।

गावो हज्जिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावयः ॥10॥

**पदपाठ**— तस्मात् । अश्वाः अजायन्त । ये । के । च । उभयादतः । गावः । ह । ज्जिरे । तस्मात् । तस्मात् । जाताः अजावयः ॥

**अन्वय**— तस्मात् अश्वाः अजायन्त, ये के च उभयादतः, तस्मात् ह गावः ज्जिरे, तस्मात् अजावयः जाता ।

**शब्दार्थ**—तस्मात् त्र उससे । अश्वाः त्र घोड़े । अजायन्त त्र उत्पन्न हुए । ये के त्र जो कोई । च त्र और । उभयादत त्र दोनों ओर दाँत वाले । तस्मात् त्र उससे । ह त्र निश्चित अर्थ का वाचक निपात । गावः त्र गायें । ज्जिरे त्र उत्पन्न हुई । तस्मात् त्र उससे । अजावयः त्र बकरियाँ तथा भेड़े । जाता त्र उत्पन्न हुई ।

**अनुवाद**— उस (यज्ञ) से घोड़े उत्पन्न हुए और जो कोई ऊपर—नीचे दोनों ओर दाँतों वाले (गधे आदि पशु हैं वे भी उत्पन्न हुए) । उससे गायें उत्पन्न हुई । उससे बकरियाँ तथा भेड़े उत्पन्न हुई ।

यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् ।

मुख किमस्य कौ बाहू कः ऊरु पादा उच्येते ॥11॥

**पदपाठ**—यत् । पुरुषम् । वि । अदधुः । कतिधा । वि । अकल्पयन् । मुखम् । किम् । अस्य । कौ । बाहू इति । कौ । ऊरु इति । पादौ । उच्येते । इति ॥

**अन्वय**— यत् पुरुषम् व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन्, अस्य मुखम् किम्, अस्य बाहू कौ, उरु कौ पादौ उच्येते ।

**शब्दार्थ**— यत् त्र जब, जिस समय । पुरुषम् त्र (देवताओं ने उस विराट्) पुरुष को । व्यदधुः त्र विभक्त किया, अलग-अलग हिस्सों में बाँटा । कतिधा त्र कितने भागों में, कितने रूपों में, व्यकल्पयन् त्र विविधरूप से कल्पित किया, बाँटा । अस्य त्र इसका, उसका । मुखम् त्र मुख । किम् त्र क्या (था) । अस्य त्र इसकी, उसकी । बाहू त्र भुजाएँ । कौ त्र कौन (थीं) । ऊरु त्र जंघाएँ । कौ त्र कौन । पादा त्र पैर । उच्येते त्र कहे जाते हैं ।

**अनुवाद**— जिस समय (देवताओं ने) (उस विराट्) पुरुष को विभक्त किया (उस समय) (उसकी) कितने भागों में (रूपों में) विविध रूप से कल्पित किया (बाँटा) । इस (पुरुष) का मुख क्या (था), इसकी भुजाएँ कौन (थीं)? (इसकी) जंघाएँ (और) पैर क्या कहे जाते हैं?

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः ।

ऊरु तदस्य यद्वैश्यः पदभ्यां शूद्रो अजायत ॥2॥

**पदपाठ**— ब्राह्मणः । अस्य । मुखम् । आसीत् । बाहू । इति । राजन्यः । कृतः । ऊरु इति । तत् । अस्य । यत् । वैश्यः । पद्भ्याम् । शूद्रः । अजायत ॥

**अन्वय**— ब्राह्मणः अस्य मुखम् आसीत्, राजन्यः बाहू कृतः, यत् वैश्यः, तत् अस्य ऊरु पद्भ्याम् शूद्रः अजायत् ।

**शब्दार्थ**—ब्राह्मणः ब्र ब्राह्मण। अस्यत्र इस (पुरुष) का। मुखम् ब्र मुख। आसीत् ब्र था। राजन्यः ब्र क्षत्रिय। बाहू ब्र दोनों भुजाएँ। कृतः ब्र बनाया गया, उत्पन्न हुआ। तत् ब्र वह। अस्यत्र इसकी। ऊरूत्र जंघाएँ। यत् ब्र जो। वैश्यः ब्र वैश्य। पद्भ्याम् ब्र पैरों से। शूद्रः ब्र शूद्र। अजायत ब्र उत्पन्न हुआ।

**अनुवाद**—ब्राह्मण इस (पुरुष) का मुख था (अर्थात् मुख से ब्राह्मण उत्पन्न हुआ)। क्षत्रिय दोनों भुजाओं को बनाया गया (दोनों भुजाओं से क्षत्रिय को बनाया गया) जो वैश्य है वह इसकी जंघाओं के रूप में था (जंघाओं से वैश्य उत्पन्न हुआ), दोनों पैरों से शूद्र उत्पन्न हुआ।

**चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत।**

**मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत ॥13 ॥**

**पदपाठ**— चन्द्रमाः। मनसः। जातः। चक्षोः। सूर्यः। अजायत। मुखात्। इन्द्रः। च। अग्निः। च। प्राणात्। वायुः। अजायत ॥

**अन्वय**— मनसः चन्द्रमाः जातः, चक्षोः सूर्यः अजायत, मुखात् इन्द्रः च अग्निः च, प्राणात् वायुः अजायत।

**शब्दार्थ**—मनसः ब्र मन से। चन्द्रमाः ब्र चन्द्रमा। जातः ब्र उत्पन्न हुआ। चक्षोः ब्र नेत्र से। सूर्यः ब्र सूर्य। अजायत ब्र उत्पन्न हुआ। मुखात् ब्र मुख से। इन्द्रः ब्र इन्द्र। च ब्र और। अग्निः ब्र अग्नि। च ब्र तथा। प्राणात् ब्र प्राणों से। वायुः ब्र वायु। अजायत ब्र उत्पन्न हुआ।

**अनुवाद**— (पुरुष के) मन से चन्द्रमा उत्पन्न हुआ, नेत्र से सूर्य उत्पन्न हुआ, मुख से इन्द्र और अग्नि (उत्पन्न हुए) तथा प्राणों से वायु उत्पन्न हुआ।

**नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत।**

**पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ अकल्पयन् ॥14 ॥**

**पदपाठ**— नाभ्याः। आसीत्। अन्तरिक्षम्। शीर्ष्णः। द्यौः। सम्। अवर्तत। पद्भ्याम्। भूमिः। दिशः। श्रोत्रात्। तथा। लोकान्। अकल्पयन् ॥

**अन्वय**— नाभ्याः अन्तरिक्षम् आसीत्, शीर्ष्णः द्यौः समवर्तत, पद्भ्याम् भूमिः, श्रोत्रात् दिशः, तथा लोकान् अकल्पयन्।

**शब्दार्थ**— नाभ्याः ब्र नाभि से। अन्तरिक्षम् ब्र अन्तरिक्ष। आसीत् ब्र था, उत्पन्न हुआ। शीर्ष्णः ब्र शीर्ष से, सिर से। द्यौः ब्र द्युलोक। समवर्तत ब्र उत्पन्न हुआ, उद्भूत हुआ। पद्भ्याम् ब्र पैरों से। भूमिः ब्र भूमि। श्रोत्रात् ब्र कान से, कानों से। दिशः ब्र दिशाएँ। तथा ब्र उस प्रकार। लोकान् ब्र लोकों की। अकल्पयन् ब्र कल्पना की, सृष्टि की।

**अनुवाद**—(पुरुष की) नाभि से अन्तरिक्ष उत्पन्न हुआ, सिर से द्युलोक उत्पन्न हुआ। पैरों से भूमि और कानों से दिशाएँ (उत्पन्न हुईं)। इस प्रकार उन्होंने लोकों की रचना की।

**सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः।**

देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन् पुरुषं पशुम् ॥15॥

**पदपाठ**— सप्त। अस्य। आसन्। परिऽधयः। त्रिः। सप्त। सम्ऽइधः। कृताः। देवाः। यत्। यज्ञम्। तन्वानाः। अबध्नन्। पुरुषम्। पशुम्॥

**अन्वय**—यत् देवाः यज्ञम् तन्वानाः पुरुषं पशुम् अबध्नन्, अस्य सप्त परिधयः आसन्, त्रिः सप्त समिधः कृताः।

**शब्दार्थ**—यत् त्र जब, जिस समय। देवाः त्र देवताओं ने। यज्ञम् त्र यज्ञ (सृष्टि—उत्पत्ति रूप मानस यज्ञ) को। तन्वानाः त्र विस्तार करते हुए। पुरुष पशुम् त्र पुरुष रूपी पशु को। अबध्नन् त्र बाँधा (ग्रहण किया)। अस्य त्र उस (यज्ञ पुरुष) की। सप्त त्र सात। परिधयः त्र परिधियाँ। आसन् त्र थीं। त्रिः सप्त त्र इक्कीस। समिधः त्र समिधाएँ। कृताः त्र की गयी, बनाई गयीं।

**अनुवाद**— जिस समय देवताओं ने यज्ञ (सृष्टि—उत्पत्ति रूप मानस—यज्ञ) का विस्तार करते हुए पुरुषरूपी पशु को बाँधा (अर्थात् ग्रहण किया) (उस समय) उस (यज्ञ—पुरुष) की सात परिधियाँ थीं (और) इक्कीस समिधाएँ बनाई गयीं।

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।

तेह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥16॥

**पदपाठ**—यज्ञेन। यज्ञम्। अयजन्त। देवाः। तानि। धर्माणि। प्रथमानि। आसन्। ते। ह। नाकम्। महिमानः। सचन्त। यत्र। पूर्वे। साध्याः। सन्ति। देवाः॥

**अन्वय**—देवाः यज्ञेन यज्ञम् अयजन्त, तानि धर्माणि प्रथमानि आसन्। ते महिमानः ह नाकं सचन्त, यत्र पूर्वे साध्याः देवाः सन्ति।

**शब्दार्थ**—देवाः त्र देवताओं ने। यज्ञेन त्र (मानस) यज्ञ के द्वारा। यज्ञम् त्र यज्ञस्वरूप प्रजापति का। अयजन्त त्र यजन किया, पूजा की। तानि त्र वे। धर्माणि त्र धर्म, नियम, सृष्टि—उत्पत्ति के विधान। प्रथमानि त्र सबसे मुख्य। आसन् त्र थे, हुए। ते त्र वे। महिमानः त्र महिमाशाली (उपासक)। ह त्र निश्चित रूप से। नाक त्र स्वर्ग को। सचन्त त्र प्राप्त करते हैं। यत्र त्र जहाँ पर। पूर्वे त्र पूर्वकालीन, प्राचीन। साध्याः देवाः त्र साध्य देव, सिद्ध को प्राप्त करने वाले देवता। सन्ति त्र रहते हैं, स्थित हैं।

**अनुवाद**— देवताओं ने (उस मानस) यज्ञ के द्वारा (अथवा यज्ञ पुरुष के द्वारा) यज्ञ—स्वरूप (प्रजापति) का यजन (पूजन) किया। वे धर्म (नियम या सृष्टि—उत्पत्ति के विधान) सबसे मुख्य हुए। वे महिमाशाली (उपासक) दिव्य स्वर्ग की प्राप्त करते हैं, जहाँ प्राचीन साध्य देव रहते हैं।

## 1.8 अक्षसूक्त (कितव) (ऋ 10 |34 |)

(ऋषि—ऐलूष कवषः। देवता—अक्ष । छन्द—जगती, अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्)

प्रावे पा मा बृहतो मादयन्ति प्रवाते जा इरिणे वर्वतानाः।

सोमस्येव मौजवतस्य भक्षो विभीदको जागृविर्मह्यमच्छान् ॥1॥

**पदपाठ**—प्रावेपाः। मा। बृहतः। मादयन्ति प्रवातेऽजाः। इरिणे। वर्वृतानाः। सोमस्यऽइव। मौजऽवतस्य। भक्षः। विऽभीदकः। जागृविः। मह्यम्। अच्छान् ॥

**अन्वय**—प्रवातेजाः बृहतः इरिणे वर्वृताना प्रावेपाः मा मादयन्ति। मौजवतस्य सोमस्य भक्ष इव जागृविः विभीदकः मह्यम् अच्छान्।

**शब्दार्थ**— प्रवातेजाः ३ तेज वायु वाले स्थानों में उत्पन्न होने वाले, ढालू प्रदेशों में उत्पन्न होने वाले। बृहतः ३ बड़े (विभीतक वृक्ष) से प्राप्त। इरिणे ३ अक्षफलक (खेलने के फर्श चौपड़, अक्षपटल) पर। वर्वृतानाः ३ लुढ़कते हुए। प्रावेपाः ३ कम्पनशील, काँपते हुए। मा ३ मुझको। मादयन्ति ३ आनन्दित (उन्मादित, मस्त) करते हैं। मौजवतस्य ३ मुंजवान् पर्वत पर उत्पन्न होने वाले। सोमस्य ३ सोमरस के। भक्ष इव ३ भक्षण (पान) के समान। जागृविः ३ जगाने वाला, जागृत रखने वाला। विभीदकः ३ बहेड़े, बहेड़े का बीज, अक्ष, जुए का पासा। मह्यम् ३ मुझको। अच्छान् ३ आनन्दित करता है, आह्लादित करता है।

**अनुवाद**—तेज वायु वाले स्थान में उत्पन्न होने वाले तथा बड़े (विभीतक वृक्ष) से प्राप्त (ये जुए के पासे) अक्षफलक पर लुढ़कते हुए तथा काँपते हुए मुझको आनन्दित करते हैं। (जुआरियों को) जगाने वाला जुए का पासा (बहेड़े का बीज, अक्ष) मुंजवान् पर्वत पर उत्पन्न होने वाले सोम के पान (भक्षण) के समान मुझको आनन्दित करता है। अर्थात् जिस प्रकार मुंजवान् पर्वत पर उत्पन्न होने वाले सोम का पान व्यक्ति को मदोन्मत्त कर देता है, उसी प्रकार जुआड़ियों को रात-दिन जगाने वाला जुए का पासा मुझको अत्यधिक उन्मादित करता है। जो व्यक्ति जुए में जीतता है वह हर्ष से जागता है और जो व्यक्ति जुए में हारता है वह दुःख से जागता है। अतः जुए को जगाने वाला कहा गया है।

न मा मिमेथ न जिहीळे एषा शिवा सखिभ्य उत मह्यमासीत्।

अक्षस्याहमेकपरस्य

हेतोरनुव्रतामप जायामरोधम् ॥2॥

**पदपाठ**— न। मा। मिमेथ। न। जिहीळे। एषा। शिवा। सखिऽभ्यः। उत। मह्यम्। आसीत्। अक्षस्य। अहम्। एकऽपरस्य। हेतोः। अनुऽव्रताम्। अप। जायाम्। अरोधम् ॥

**अन्वय**— एषा मा न मिमेथ, न जिहीळे, सखिभ्यः उत मह्यम् शिवा आसीत्, अहम् एकपरस्य अक्षस्य हेतोः अनुव्रताम् जायाम् अप अरोधम्।

**शब्दार्थ**—एषा ३ यह। मा ३ मुझको, मुझसे। न ३ नहीं। मिमेथ ३ कलह (झगड़ा) करती थी। न ३ नहीं। जिहीळे ३ क्रोध करती थी। सखिभ्यः ३ मित्रों के लिए। उत ३ और। मह्यम् ३ मेरे लिए। शिवा ३ कल्याणकारिणी। आसीत् ३ थी। अहम् ३ मैंने। एकपरस्य ३ एक है प्रधान जिसमें ऐसे, एकमात्र। अक्षस्य ३ अक्ष



के। हेतोः त्र कारण। अनुव्रताम् त्र अनुगमन करने वाली, आज्ञाकारिणी। जायाम् त्र पत्नी को। अपअरोधम् त्र परित्याग कर दिया, छोड़ दिया, घर से बाहर निकाल दिया।

**अनुवाद**—यह (मेरी पत्नी) मुझसे कलह (झगड़ा) नहीं करती थी और न मुझ पर क्रोध करती थी। मेरे मित्रों के लिए और मेरे लिए यह कल्याणकारिणी (अच्छा व्यवहार करने वाली) थी। एकमात्र जुए के कारण मैंने अपनी आज्ञाकारिणी पत्नी का परित्याग कर दिया।

**द्वेष्टि श्वश्रुरप जाया रुणद्धि नाथितो विन्दते मर्डितारम्।**

**अश्वस्येव जर तो वस्न्यस्य नाहं विन्दामि कितवस्य भोगम्।।3।।**

**पदपाठ**—द्वेष्टि। श्वश्रूः। अप। जाया। रुणद्धि। य। नाथितः। विन्दते। मर्डितारम्। अश्वस्यऽइव। जरतः। वस्न्यस्य। न। अहम्। विन्दामि। कितवस्य। भोगम्।।

**अन्वय**— श्वश्रूः अपद्वेष्टि, जाया रुणद्धि, नाथितः मर्डितारम् न विन्दते। अहम् वस्न्यस्य जरतः अश्वस्य इव कितवस्य भोगम् न विन्दामि।

**शब्दार्थ**— श्वश्रूः त्र सास, पत्नी की माता! द्वेष्टि त्र द्वेष करती है। जाया त्र पत्नी। अपरुणद्धि त्र रोकती है, दूर भगा देती है, ढकेल देती है। नाथितः त्र याचना करता हुआ (जुआड़ी)। मर्डितारम् त्र सुख देने वाले को, दया करने वाले की। न त्र नहीं। विन्दते त्र प्राप्त करता है। अहम् त्र मैं। वस्न्यस्य त्र बहुमूल्य बेचे जाने वाले। जरतः त्र वृद्ध। अश्वस्य इव त्र घोड़े के समान। कितवस्म त्र जुआड़ी के। भोगम् त्र उपयोग। न विन्दामि त्र नहीं प्राप्त करता हूँ, नहीं पाता हूँ।

**अनुवाद**— (जुआड़ी से उसकी) सास द्वेष करती है, उसकी पत्नी उसे दूर भगा देती है। (जुआ खेलने के लिए धन की) याचना करता हुआ जुआड़ी (धन देकर) सुख देने वाले (व्यक्ति) को नहीं प्राप्त करता है। मैं बहुमूल्य वृद्ध घोड़े के समान जुआड़ी का कोई उपयोग नहीं पाता हूँ (अर्थात् जिस प्रकार बहुमूल्य भी अश्व वृद्ध होने के कारण उपयोग के अयोग्य हो जाता है, उसी प्रकार जुआड़ी व्यक्ति समाज के लिए भार बन जाता है।

**अन्ये जायां परि मृशन्त्यस्य यस्यागृधद्देदने वाज्यक्ष।**

**पिता माता भ्रातर एनमाहु न जानीमो नयता बद्धमेतम्।।4।।**

**पदपाठ**—अन्ये। जायाम्। परि। मृशन्ति। अस्य। यस्य। अगृधत्। वेदने। वाजी। अक्षः। पिता। माता। भ्रातरः। एनम् आहुः। न। जानीमः। नयत। बद्धम्। एतम्।

**अन्वय**—यस्य वेदने वाजी अक्षः अगृधत्, अस्य जायाम् अन्ये परिमृशन्ति, पिता माता भ्रातरः एनम् आहुः न जानीमः बद्धम् एनम् नयत।

**शब्दार्थ**—यस्य त्र जिस (व्यक्ति) के। वेदने त्र धन पर। वाजी त्र बलवान्। अक्षः त्र जुए का पासा। अगृधत् त्र ललचाया, लोभ किया। अस्य त्र इस (जुआड़ी) की। जायाम् त्र पत्नी को। अन्ये त्र दूसरे लोग।

परिमृशन्ति च छूते हैं, छेड़ते हैं, आलिंगन करते हैं, वस्त्र केशादि खींचकर अपमानित करते हैं। पिता माता भ्रातरः च पिता, माता और भाई। एनम् आहुः च इसके विषय में कहते हैं। न जानीमः च नहीं जानते हैं। बद्धम् च बँधे हुए इसकी। नयत च ले जाओ।

**अनुवाद—** जिस (व्यक्ति) के धन पर बलवान् जुए का पासा ललचाया (ललचाने लगता है) (अर्थात् जो अपने धन को जुए में लगाने लगता है), उस (जुआड़ी) की पत्नी को दूसरे लोग छूते हैं (आलिंगन करते हैं अथवा वस्त्र केश आदि खींचकर अपमानित करते हैं)। (जुआड़ी के) पिता, माता और भाई इस (जुआड़ी) के विषय में (राजकर्मचारी या ऋणदाता से) इसे बाँधकर ले जाओ (अथवा बँधे हुए इसको जहाँ चाहो वहाँ ले जाओ)।

**यदादीध्ये न दविषाण्येभिः परायद्भ्योऽव हीये सखिभ्यः।**

**न्युप्ताश्च बभ्रवो वाचमक्रत एमीदेषां निष्कृतं जारिणीव।।5।।**

**पदपाठ—**यत्। आऽदीध्ये। न। दविषाणि। एभिः। परायत्ऽभ्यः। अव। हीये। सखिभ्यः। निऽउप्ताः। च। बभ्रवः। वाचम्। अक्रत। एमि। इत्। एषाम्। निऽकृतम् जारिणीऽइव।।

**अन्वय—**यत् आदीध्ये एभिः न दविषाणि परायद्भ्यः सखिभ्य अव हीये बभ्रवः न्युप्ताः वाचम् अक्रत, एषां निष्कृतं जारिणी इव एमि इत्।

**शब्दार्थ—** यत् च जब। आदीध्ये च विचार करता हूँ, संकल्प करता हूँ। एभिः च इन (पासों से अथवा इन (जुआ खेलने वाले मित्रों) के साथ। न दविषाणि च नहीं खेलूँगा, नहीं जाऊँगा। परायद्भ्यः च (जुए के स्थान की ओर) जाते हुए। सखिभ्यः च (जुआड़ी) मित्रों से। अवहीये च छूट जाता हूँ, पीछे रह जाता हूँ, छिप जाता हूँ। बभ्रवः च भूरे रंग वाले। न्युप्ताः च फेंके जाने पर। वाचम् च शब्द। अक्रत च किया, करते हैं। एषाम च इन (पासों) के। निष्कृतम् च खेलने के स्थान पर। जारिणी इव च व्याभिचारिणी स्त्री के समान। एमिइत् च जाता ही हूँ।

**अनुवाद—** जब मैं सोचता हूँ कि इन (पासों) से नहीं खेलूँगा (अथवा इन जुआड़ियों के साथ नहीं जाऊँगा), जब (जुए के स्थान की ओर) जाते हुए मित्रों से छूट जाता हूँ। किन्तु जब भूरे रंग वाले (पासे) फेंके जाने पर शब्द करते हैं, तब मैं एक व्यभिचारिणी स्त्री के समान इन (पासों) के स्थान पर पहुँच जाता हूँ (अर्थात् जिस प्रकार व्यभिचारिणी स्त्री जार से मिलने के लिए संकेत—स्थल पर पहुँच जाती है, मैं जुआघर में उसी प्रकार पहुँच जाता हूँ)।

**सभामेति कितवः पृच्छमानो जेष्यामीतिं तन्वा शूशुजानः।**

**अक्षासो अस्य वि तरन्ति कामं प्रतिदीध्नेधत आकृतानि।।6।।**

**पदपाठ—** सभाम्। एति। कितवः। पृच्छमानः जेष्यामि। इति। तन्वा। शूशुजानः। अक्षासः। अस्य। वि। तिरन्ति। कामम्। प्रतिऽदीध्ने। दधतः। कृतानि।।

**अन्वय—** तन्वा शूशुजानः कितवः जेष्यामि इति पृच्छमानः सभाम् एति, अक्षासः प्रतिदीधने कृतानिधतः अस्य कामं वितरन्ति ।

**शब्दार्थ—**तन्वा त्र शरीर से। शूशुजामः त्र काँपता हुआ या चमकता हुआ (अर्थात् गर्व को व्यक्त करता हुआ)। कितवः त्र जुआड़ी। जेष्यामि त्र जीतूँगा। इति त्र ऐसा, इस प्रकार। पृच्छमानः त्र पूछता हुआ, सोचता हुआ विचार करता हुआ। सभाम् त्र द्यूतसभा में, जुआ खेलने के स्थान में, जुआघर में। एति त्र जाता है। अक्षासः त्र जुए के पास। प्रतिदीधने त्र विरोधी (प्रतिद्वन्दी) जुआड़ी के लिए। कृतानि त्र कृत नाम की चाल उत्तम दाँव। दधतः त्र रखते हुए, लाते हुए, प्रदान करते हुए। अस्य त्र इस (जुआड़ी) की। कामम् त्र अभिलाषा को, मनोरथ को। वि तिरन्ति त्र विफल बना देते हैं विनष्ट कर देते हैं, मिट्टी में मिला देते हैं या बढ़ा देते हैं, वर्धित कर देते हैं।

**अनुवाद—** शरीर से काँपता हुआ (अथवा—गर्व से छाती को फुलाता हुआ) जुआड़ी 'जीतूँगा' ऐसा विचार करता हुआ द्यूतसभा (जुआघर) में जाता है। जुए के पास विरोधी (प्रतिद्वन्दी) जुआड़ी के लिए (अर्थात् विरोधी जुआड़ी के पक्ष में) उत्तम दाँवों (कृत नामक उत्तम चाल) को रखते (लाते) हुए इस (जुआड़ी) के मनोरथ को विफल बना देते हैं।

**अक्षास इदङ्कु शिनो नितोदिनो निकृत्वानस्तप नास्तापयिष्णवः ।**

**कुमारदेष्णा जयतः पुनर्हणो मध्वा सम्पृक्ताः कित्वस्य बर्हणा ॥7॥**

**पदपाठ—** अक्षासः । इत् । अङ्कु शिनः । निऽतोदिनः । निऽकृत्वानः । तपनाः । तापयिष्णवः । कुमारऽदेष्णाः । जयतः पुनःऽहनः । मध्वा । समऽपृक्ता कित्वस्य । बर्हणा ॥

**अन्वय—** अक्षासः इत् अङ्कुशिनः नितोदिनः निकृत्वानः तपनाः तापयिष्णवः कुमारदेष्णाः पुनर्हणः कित्वस्य बर्हणा मध्वा सम्पृक्ताः ।

**शब्दार्थ—** अक्षासः त्र जुए के पास। इत् त्र निश्चय ही। अङ्कुशिनः त्र अङ्कुश वाले। नितोदिनः त्र चाबुक (कोड़े) वाले। निकृत्वानः त्र काटने वाले। तपनाः त्र तपाने वाले। तापयिष्णवः त्र संताप दिलाने वाले। कुमारदेष्णाः त्र बच्चों के समान (धन) देने वाले। जयतः त्र विजयी का। पुनर्हणः त्र पुनः हनन करने वाले। कित्वस्य त्र जुआड़ी की। बर्हणा त्र वृद्धि के द्वारा। मध्वा त्र मधु (शहद) से। सम्पृक्ताः त्र सने हुए।

**अनुवाद—**जुए के पास निश्चित ही अङ्कुश वाले हैं (अर्थात् जिस प्रकार अङ्कुश हाथी पर शासन करता है, उसी प्रकार पास जुआड़ी पर शासन करते हैं— उसे जुआ खेलने के लिए प्रेरित करते हैं), चाबुक (कोड़े) वाले हैं (अर्थात्) जिस प्रकार चाबुक घोड़े, बैल आदि को चलाता है, उसी प्रकार पास जुआड़ी को चलाते हैं—जुआ खेलने के लिए बाध्य करते हैं), काटने वाले (अर्थात् विनाश करने वाले) हैं, तापने (जलाने) वाले (अर्थात् संताप देने वाले) हैं, तपवाने (जलवाने) वाले (संताप दिलाने वाले अर्थात् जुआड़ी द्वारा उसके परिवार

को कष्ट दिलाने वाले) हैं, बच्चों के समान धन देने वाले (और पुनः ले लेने वाले), विजयी का पुनः हनन करने वाले (जीतने वाले जुआड़ी को फिर मारने वाले अर्थात् जीतने वाले जुआड़ी से पुनः धन छीन लेने वाले, हराकर पुनः धन का नाश करने वाले) तथा जुआड़ी की वृद्धि द्वारा (अर्थात् जुआड़ी के धन को वृद्धि करने के कारण) मधु (शहद) से युक्त (मधु से सने हुए, मीठे, आकर्षक) होते हैं।

**त्रिपंचाशः क्रीळति व्रात एषां देव इव सविता सत्यधर्मा।**

**उग्रस्य चिन्मन्यवे ना नमन्ते राजा चिदेभ्यो नम इत्कृणोति।।8।।**

**पदपाठ—** त्रिपंचाशः। क्रीळति। व्रातः। एषाम्। देवःऽइव। सविता। सत्यऽधर्मा। उग्रस्य। चित्। मन्यवे। न। नमन्ते। राजा। चित्। एभ्यः। नमः। इत्। कृणोति।।

**अन्वय—** सत्यधर्मा सविता देवः इव एषाम् त्रिपंचाशः व्रातः क्रीळति, उग्रस्य मन्यवे न नमन्ते। राजा चित् एभ्यः नमः इत् कृणोति।

**शब्दार्थ—** सत्यधर्मा त्र सत्य नियमों वाले। सविता देवः त्र सवितृ देवता। इव त्र समान। एषाम् त्र इन (पासों) का। त्रिपंचाशः त्र तिरपन संख्या वाला। व्रातः त्र समूह। क्रीळति त्र खेलता है, उछलता है। उग्रस्य त्र क्रोधी के, प्रचण्ड के, शक्तिशाली के। मन्यव त्र क्रोध के समक्ष। न त्र नहीं, नमन्ते त्र झुकते हैं। राजा त्र राजा। चित् त्र भी। एभ्यः त्र इनके लिए। नमः त्र नमस्कार। इत् त्र ही। कृणोति त्र करता है।

**अनुवाद—** सत्य नियमों वाले सवितृ देव के समान इन पासों का तिरपन संख्या वाला समूह (अर्थात् तिरपन पासों का समूह) (अक्ष-पटल पर) खेलता है (अर्थात् उछलता है)। क्रोधी (व्यक्ति) के क्रोध के समक्ष भी (ये पासे) नहीं झुकते हैं। राजा भी इन्हें नमस्कार ही करता है। (जुआड़ी प्रायः तिरपन पासों से जुआ खलते हैं। स्वयं नियम का पालन करने वाले सविता के समान पासे भी स्वतंत्र होते हैं और अपने ही नियम पर चलते हैं अथवा यों कहिए—जिस प्रकार सविता देवता के नियम का उल्लंघन नहीं होता है, उसी प्रकार पासों के नियम का भी उल्लंघन नहीं होता है)।

**नीचा वर्तन्त हस्तवन्तं उपरि स्फुरन्त्यहस्तासो सहन्ते।**

**दिव्या अंगारा इरिणेन्युप्ताः शीताः सन्तो हृदयं निर्दहन्ति।।9।।**

**पदपाठ—** नीचाः। वर्तन्ते। उपरि। स्फुरन्ति। अहस्तासः। हस्तऽवन्तम्। सहन्ते। दिव्याः। अंगाराः। इरिणे। निःउप्ताः। शीताः। सन्तः। हृदयम्। निः। दहन्ति।।

**अन्वय—** नीचाः वर्तन्ते उपरि स्फुरन्ति। अहस्तासः हस्तवन्तम् सहन्ते। इरिणेन्युप्ताः दिव्याः अंगाराः शीताः सन्तः हृदयम् निर्दहन्ति।

**शब्दार्थ—** नीचाः त्र नीचे। वर्तन्त त्र रहते हैं, पड़ते हैं, लुढ़कते हैं। उपरि त्र ऊपर। स्फुरन्ति त्र उछलते हैं, फड़कते हैं। अहस्तासः त्र हस्तरहित, बिना हाँथों के। हस्तवन्तम् त्र हाथों वाले को। सहन्ते त्र अभिभूत करते हैं, दबा

लेते हैं। इरिणे ऋ अक्ष-पटल पर। न्युप्ताः ऋ फेंके गये। दिव्याः ऋ दिव्य, अलौकिक, अद्भुत। अंगाराः ऋ अंगारे। शीताः सन्तः ऋ शीतल होते हुए भी। हृदयम् ऋ हृदय को। निर्दहन्ति ऋ जलाते हैं।

**अनुवाद—** ये (पासे) नीचे (अक्षपटल पर) लुढ़कते (पड़ते) हैं किन्तु ऊपर उछलते (फड़कते) हैं अर्थात् जुआड़ी के हृदय-पटल के ऊपर प्रभाव डालते हैं—पराजय के भय से जुआड़ी को डराते रहते हैं), हाथों से रहित होते हुए भी हाथों वाले (जुआड़ी) को अभिभूत कर लेते हैं (दबा लेते हैं)। अक्षपटल पर फेंके गये ये दिव्य अंगारे (अथवा—दिव्य अंगारों के सदृश ये पासे) स्वयं शीतल (ठण्डे) होते हुए भी (जुआड़ी के) हृदय को (पराजय के संताप से) जलाते हैं।

जाया तप्यते कितवस्यहीना माता पुत्रस्य चरतः क्व स्वित्।

ऋणावा बिभ्यद्दनाभिच्छमानोऽन्येषामस्तमुप नक्तमेति ॥10॥

**पदपाठ—** जाया। तप्यते। कितवस्य। हीना। माता। पुत्रस्य। चरतः। क्व। स्वित्। ऋणावा। बिभ्यत्। धनम्। इच्छमानः। अन्येषाम्। अस्तम्। उप। नक्तम्। एति ॥

**अन्वय—** कितवस्य हीना जाया तप्यते, क्व स्वित् चरतः पुत्रस्य माता, ऋणावा बिभ्यत् धनम् इच्छमानः नक्तम् अन्येषाम् अस्तम् उपएति।

**शब्दार्थ—**कितवस्यः जुआड़ी की। हीना ऋ आश्रयहीना, परित्यक्ता। जाया ऋ पत्नी। तप्यत ऋ सन्तप्त (दुःखी, दुःखित) होती है। क्व स्वित् ऋ कहीं। चरतः ऋ विचरण करते हुए, घूमते, भटकते हुए। पुत्रस्य माता ऋ पुत्र की माता। ऋणावा ऋ ऋणी, ऋण से युक्त। विभ्यत् ऋ डरता हुआ। धनम् इच्छमानः ऋ धन को चाहता हुआ। नक्तम् ऋ रात्रि में। अन्येषाम् ऋ दूसरों के। अस्तम् ऋ घर। उप एति ऋ जाता है, पहुँचता है।

**अनुवाद—**जुआरी की आश्रयहीना पत्नी (दुःखी) रहती है, कहीं घूमते हुए (इधर-उधर भटकते हुए) (जुआड़ी) पुत्र की माता (भी दुःखित रहती है)। ऋणी (जुआड़ी) (ऋणदाता से) डरता हुआ तथा धन की इच्छा (कामना, अभिलाषा) करता हुआ (चोरी करने के लिए) रात्रि में दूसरों के घर जाता है।

स्त्रियं दृष्ट्वाय कितवं ततापाग्येषां जायां सुकृ तं च योनिम्।

पूर्वाहिल अश्वान्य युजे हि बभ्रून्त्सो अग्नेरन्ते वृषलः पपाद ॥11॥

**पदपाठ—**स्त्रियम्। दृष्ट्वाय। कितवम्। तताप। अन्येषाम्। जायाम्। सुकृतम्। च। योनिम्। पूर्वाहिले। अश्वान् युयुजे। हि। बभ्रून्। सः। अग्नेः। अन्ते। वृषलः। पपाद ॥

**अन्वय—**कितवम् स्त्रियम् अन्येषाम् जायाम् सुकृतम् योनिम् दृष्ट्वाय संताप पूर्वाहिले बभ्रून् युयुजे, वृषलः अग्नेः अन्ते पपाद।

**शब्दार्थ—** कितवम् त्र कितवः (विभक्तिव्यत्यय से कर्ता के स्थान पर कर्म का प्रयोग हुआ, जुआड़ी। स्त्रियम् त्र (अपनी) पत्नी को। अन्येषाम् त्र दूसरी की। जायाम् त्र पत्नी को, जातवेकवचनम्। सुकृतम् त्र सुनिर्मित, सुसज्जित। योनिम् त्र घर को।। दृष्ट्वायत्र देखकर।

तताप त्र संतप्त (दुःखी) होता है। पूर्वाह्ने त्र दिन के पहले भाग में, प्रातःकाल। बभ्रून त्र भूरे। अश्वान् त्र अश्वों को, पासों को। युयुजे त्र जोतता है। वृषलः त्र नीच। अग्नेः अन्ते त्र अग्नि के समीप। पपाद त्र गिर पड़ता है, पड़ा रहता है।

**अनुवाद—** जुआड़ी (अपनी कष्ट भोगती हुई) पत्नी को तथा दूसरे की (सुख भोगती हुई) पत्नी और सुसज्जित (सुनिर्मित) घर को देखकर संतप्त (दुःखी) होता है। वह (जुआड़ी) प्रातःकाल भूरे अश्वों (पासों) को जोतता है (अर्थात् पासों को दाँव पर लगाता है—जुआ खेलता है। और (जुए में हार कर सायंकाल) वह नीच (शीत से पीड़ित होकर) अग्नि के पास गिर पड़ता है (अग्नि के पास पड़ कर रात बिताता है)।

**यो वः सेनानीर्म हतो गणस्य राजा व्रातस्य प्रथमो बभूव।**

**तस्मै कृणोमि न धना रुणधि दशाहं प्राचीस्तदृतं वदामि।।12।।**

**पदपाठ—** यःवः। सेनाऽमीः। महतः। गणस्य। राजा। व्रातस्य। प्रथमः। बभूव। तस्मै। कृणोमि। न। धना रुणधि। दश। अहम्। प्राचीः। तत्। ऋतम्। वदामि।।

**अन्वय—** वः महतः गणस्य यः सेनानी बभूव, व्रातस्य प्रथमः राजा, तस्मै अहम्, दश प्राचीः कृणोमि, धना न रुणधि। तत् ऋतम् वदामि।

**शब्दार्थ—**वः त्र तुम्हारे। महतः गणस्यत्र महान् गण (तिरपन संख्या वाले समुदाय का। यःत्र जो (अक्ष, पासा)। सेनानीः त्र सेनापति, नायक। बभूव त्र था, है। व्रातस्यत्र संघ का, समूह का। प्रथमः राजा त्र प्रमुख राजा। तस्मै त्र उस (अक्ष) के लिए। अहम् त्र मैं (जुआड़ी। दश त्र दस (अंगुलियाँ)। प्राचीः त्र पूर्व की ओर, सामने। कृणोमि त्र करता हूँ। धना न रुणधि त्र मैं धनों को नहीं रोकता हूँ। तत् त्र वह, यह। ऋतम् त्र सत्य। वदामि त्र कहता हूँ।

**अनुवाद—** (हे अक्षो!) जो (अक्ष) तुम्हारे महान् गण का सेनापति है, जो तुम्हारे संघ का प्रमुख राजा है, उसके सामने (उसके लिए) मैं दसों अंगुलियाँ सामने करता हूँ (अर्थात् हाथ जोड़कर नमस्कार करता हूँ) मैं धनों को रोकता नहीं हूँ। (मैंने धन नहीं छिपाया है—जुआ खेलने के लिए अब मेरे पास धन नहीं रह गया है), यह मैं सत्य कहता हूँ।

**अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित्कृषस्व वित्ते रमस्व बहुमन्यमानः।**

**तत्र गावः कितव तत्र जाया तत्मे विचष्टे सवितायमर्यः।।13।।**

**पदपाठ—**अक्षैः। मा। दीव्यः। कृषिम्। इत्। कृषस्व। वित्ते। रमस्व। बहु। मन्यमानः। तत्र। गावः। कितव। तत्र। जाया। तत्। मे। विचष्टे। सविता। अयम्। अर्यः।।

**अन्वय**—कितव ! अक्षैः मा दीव्यः कृषिम् इत् कृषस्व। बहु मान्यमानः वित्ते रमस्व, तत्र गावः, तत्र जाया, तत् मे अयम् अर्यः सविता विचष्टे।

**शब्दार्थ**—कितव त्र हे जुआड़ी! अक्षैः त्र पासों से। मा दीव्यःत्र मत खेलो। कृषिम् इत् त्र खेती ही। कृषस्व त्र जोतो, करो। वित्ते त्र धन में। बहु त्र बहुत, पर्याप्त। मन्यमानः त्र मानते हुए, समझते हुए। रमस्व त्र रमण करो, आनन्द करो, सन्तोष करो। तत्र त्र वहाँ। गावः त्र गायें। तत्र त्र वहाँ। जाया त्र पत्नी। तत् त्र यह। मे त्र मुझे। अयम् त्र यह। अर्यः त्र श्रेष्ठ। सविता त्र देवता। विचष्टे त्र समझा कर कहा है।

**अनुवाद**— हे जुआड़ी! पासों से मत खेलो (अर्थात् जुआ मत खेलो) खेती ही जोतो (अर्थात् खेती ही करो)। (खेती द्वारा प्राप्त धन को) बहुत (पर्याप्त) मानते हुए (उस) धन में रमण करो (आनन्द का अनुभव करो), वहाँ (खेती के कर्म में) गायें हैं तथा वहाँ (खेती के कर्म में) तेरी स्त्री है। (खेती करने से जुए में हार गये तुम्हारे पशु मिल जायेंगे और जुआ खेलने के कारण अन्यत्र गई हुई तुम्हारी पत्नी तुम्हें मिल जायेगी)— यह मुझसे श्रेष्ठ सविता देवता ने समझा कर कहा है।

**मित्रं कृणुध्वं खलु मृळता नो घोरेण चरतानि धृष्णु।**

**नि वो नु मन्युर्विशतामरातिरन्यो बभ्रू णां प्रसितौ न्वस्तु।।14।।**

**पदपाठ**— मित्रम्। कृणुध्वम्। खलु। मृळत। नः। मा। नः। घोरेण। चरत। अभि। धृष्णु। नि। वःनु। मन्युः। विशताम्। अरातिः। अन्यः। वभ्रू णाम्। प्रसितौ। नु। अस्तु।।

**अन्वय**— मित्रम् कृणुध्वम्, खलु नः मृळत, धृष्णु घोरेण मा अभिचरत। नु वः मन्युः अरातिः नि विशताम् नु अन्यः बभ्रूणाम् प्रसितौ अस्तु।

**शब्दार्थ**—मित्रम् त्र मित्र, मित्रता। कृणुध्वम् त्र करो, बनाओ। खलु त्र पादपूर्ति के लिए निपात। नः त्र हमारे ऊपर। मृळत त्र दया करो। धृष्णु त्र दबा लेने वाले, अभिभूत करने वाले। घोरेण त्र भयंकर प्रभाव से, भयंकर जादू से। मा त्र मत। अभिचरत त्र अभिचार करो, मोहित करो। नु त्र अब। वः त्र तुम्हारा। मन्युः त्र क्रोध। अरातिः त्र शत्रुता। निविशनाम् त्र रुक जाय, शान्त हो जाय। नु त्र अब। अन्यःत्र दूसरा। बभ्रूणाम् त्र भूरे (पासों) के। प्रसितौ त्र बन्धन में, जाल में। अस्तु त्र होवे, पड़े।

**अनुवाद**—(हे पासों! अब मुझको) मित्र बना लो, हमारे ऊपर दया (कृपा) करो। अपने दबा लेने वाले तथा भयंकर प्रभाव से हमें मोहित न करो (हमारे ऊपर अभिचार न करो)। तुम्हारा क्रोध और तुम्हारी शत्रुता अब शान्त हो जाय। अब कोई दूसरा व्यक्ति भूरे (पासों) के बन्धन (जाल) में न पड़े।

## 1.9 सारांश—

इस इकाईमें आपने ऋग्वेद के देवताओं का परिचय प्राप्त किया है। ऋग्वेद का प्रथम मन्त्र अग्नि देवता को ही सम्बोधित किया गया है तथा प्रथम पद भी 'अग्निम्' ही है। इसके अतिरिक्त इन्द्र, उषस, पुरुष, कितव आदि सूक्तों की व्याख्या, पद पाठ, अन्वय, शब्दार्थ पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है।

### 1.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. ऋक्सूक्त संग्रह— हरदत्त शास्त्री
2. ऋक्सूक्त संग्रह— तारिणीश झा
3. वैदिक सूक्त संग्रह— डॉ० विजय शंकर पाण्डेय

### 1.11 स्वपरख प्रश्न / अभ्यास

1. अग्निसूक्त में किस छन्द का प्रयोग किया गया है।
2. ऋग्वैदिक देवताओं में प्रधान देवता का नाम बताइये।
3. अग्नि के कार्य को समझाइये।
4. इन्द्र के स्वरूप पर प्रकाश डालिये?
5. उषा का अन्य देवताओं के सम्बन्ध पर प्रकाश डालिये?
6. पुरुष द्वारा सृष्टि की उत्पत्ति पर प्रकाश डालिये।
7. अक्ष सूक्त के अमर संदेश पर प्रकाश डालिये।



## इकाई-2

### अथर्ववेद, सामवेद एवं यजुर्वेद

#### इकाई की रूपरेखा

- 2.1 उद्देश्य
- 2.2 प्रस्तावना
- 2.3 सौमनस्य 3-30
- 2.4 राष्ट्राभिवर्धनम् 2-29
- 2.5 शत्रुनाशनम् 2-12
- 2.6 काल सूक्त 19-53
- 2.7 तक्मन् 6-20
- 2.8 सामवेद (कौथम) पूर्वार्चिक, पवमान काण्ड (1-20 मन्त्र अध्याय 5, प्रथम एवं द्वितीय खण्ड (कुल 20 मन्त्र)
- 2.9 शुक्ल यजुर्वेद- शिवसंकल्प सूक्त 1-6 मंत्र।
- 2.10 सारांश
- 2.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें
- 2.12 स्वपरख प्रश्न/अभ्यास

#### 2.1 उद्देश्य-

इस इकाई में अथर्ववेद, सामवेद एवं यजुर्वेद के क्रमशः सौमनस्य, राष्ट्राभिवर्धनम्, शत्रुनाशनम्, कालसूक्त, तक्मन्, पूर्वार्चिक, पवमान काण्ड, शिवसंकल्प सूक्तों की व्याख्या, पदपाक, अन्वय, शब्दार्थ प्रस्तुत किया गया है। आप इसके अध्ययन से वेदों में प्रतिपाद्य विषयों से परिचित हो सकेंगे।

#### 2.2 प्रस्तावना-

वेदों में प्रतिपाद्य विषयों की दैनिक जीवन से विशेष सम्बन्ध है। जहाँ इस इकाई में आप सौमनस्य, राष्ट्राभिवर्धनम्, शत्रुनाशनम्, कालसूक्त, तक्मन्, पूर्वार्चिक, पवमान काण्ड, शिवसंकल्प सूक्तों से प्रमुख प्रतिपाद्य विषयों पर सैद्धान्तिक परिचय प्राप्त करेंगे।

## 2.3 सौमनस्य 3-30

(ऋषि- अथर्वा । देवता- सौमिनस्थम । छन्द- अनुष्टुप, जगती, त्रिष्टुप)

सहृदयं सामनस्यमविद्वेष कृणोमि वः ।

अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्स जातमिवाध्या ॥1॥

हे विवादी पुरुषो! तुम्हारे लिए मैं विद्वेष-भाव को दूर करने वाला, प्रीतियुक्त सौमनस्य कर्म करता हूँ। गौँ जैसे अपने वत्स से स्नेह करती हैं, वैसे ही तुम परस्पर व्यवहार करो।

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः ।

जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शान्तिवाम् ॥2॥

पुत्र पिता का अनुगत हो, माता भी पुत्र के अनुकूल मनवाली हो। पत्नी पति से मधुर वाणी बोलने वाली हो।

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वासा ।

सम्यवंचः सव्रता भूत्वा वाचं वदतु भद्रया ॥3॥

भाग बाँटने के लिए भ्राता-भ्राता का बुरा न करें। बहिन-भाई से बैर न करें। यह सब भाई समान कार्य और समान गति वाले होकर मंगलमय बातें करें।

येन देवा न वियन्ति नो च विद्विषते मिथः ।

तत् कृण्मौ ब्रह्म वो गृहे संज्ञानं पुरुषेभ्यः ॥4॥

जिस मंत्र के बल से देवता विभिन्न मन वाले नहीं होते और न परस्पर बैरभाव रखते हैं, उस समानता के कारण रूप मंत्र से सम्बन्धित सौमनस्य को हम तुम्हारे लिए करते हैं।

ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वि यौष्ट संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः ।

अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदन्त एत सध्रीचीनान् वः संमनसस्कृणोमि ॥5॥

तुम समान मन वाले, समान कार्य वाले रहकर छोटे-बड़ों का ध्यान रखते हुए परस्पर सुन्दर वचन कहते हुए जाओ। हे मनुष्यो! मैं तुम्हें समान कार्यो में प्रवृत्त करता हूँ।

समानी प्रपासह वोऽन्नभागः समाने याक्त्रे सह वो युनज्मि ।

सम्यंचोऽग्निं सचर्यतारा नाभिमिवाभितः ॥6॥

समानता के इच्छुको! तुम्हारा अन्न-पानी का उपभोग एक सा हो। मैं तुम्हें प्रेम सूत्र में साथ-साथ बाँधता हूँ। जैसे पहिए के अरे नाभि के आश्रित होते हैं, वैसे ही तुम एक अग्नि के आश्रम में रहते हुए उनकी सेवा करो।

सध्रीचीनान् वः संमनसस्कृणोम्येकशुष्तीन्त्सं वननेन् सर्वान् ।

देवाइवामृतं रक्षमाणाः सायंप्रातः सौमनसौ वा अस्तु ॥7॥

मैं तुम्हें समान तन बनाकर एक से कार्य में प्रवृत्त करता हूँ। इसी कर्म में मैं तुम्हें वशीभूत करता हूँ। स्वर्ग में, अमृत की एक मत से रक्षा करने वाले इन्द्र आदि देवताओं के मन जैसे श्रेष्ठ रहते हैं, वैसे प्रातः सायं हर समय तुम्हारे मन सुन्दर रहें।

## 2.4 राष्ट्राभिवर्धनम् 2-29

(ऋषि वशिष्ठ । देवता ब्रह्मणस्पतिः अभीवर्तमणिः । छन्द अनुष्टुप ।)

अभीवर्तेन मणिना येनेन्द्रे अभिवावृधे ।

तेनास्मान् ब्रह्मणस्पतेऽभि राष्ट्राय वर्धय ॥1॥

हे ब्रह्मणस्पते! इन्द्र जिस समृद्धिदायक मणि से वृद्धि को प्राप्त हुए, उस मणि के सहारे शत्रुओं द्वारा उत्पीड़न राष्ट्र की समृद्धि का संवर्द्धन करो। अश्व, गज, ऐश्वर्य आदि से हमको सम्पन्न करो।

अभिवृत्य सपत्नानभि या नो अरातयः ।

अभि पृतन्यन्तं तिष्ठामि यो नो दूरस्ययति ॥2॥

हे मणे! तू हमारे शत्रुओं के सम्मुख जा डटे और हमारे पक्ष की होकर उन्हें पराजित करे। तू हमारे सभी स्वाभाविक बैरियों के सामने जाकर रणक्षेत्र को प्राप्त हुए शत्रुओं को निवीर्य करे।

अभि त्वा देवः सविताभि सोमो अवीवृधत् ।

अभि त्वा विश्वा भूतान्यभीवर्तो यथाससि ॥3॥

हे मणे! जीवों को प्रेरणा देने वाले सविता देव ने तुझे समृद्ध कर दिया है, सोम ने तेरी वृद्धि की है। वह सभी प्राणी तेरी वृद्धि करते हैं। जो तुझे धारण करता है, तू उसकी महिमा को फैलाती है।

अभीवर्तो अभिभवः सपत्नक्षयणो मणिः ।

राष्ट्राय मह्यं बध्यतां सपत्नेभ्यः पराभुवेः ॥4॥

इस वृद्धि का साधन रूप शत्रुओं को वश में कर उन्हें नष्ट करने वाली मणि को राष्ट्र की समृद्धि और शत्रुओं की हार के निमित्त मेरे बांधों ॥4॥

उदसौ सूर्यो अगादुदिदं मामकं वचः ।

यथाहं शत्रु होऽसान्यसपत्नः सपत्नहा ॥5॥

सब प्राणियों को प्रेरणा देने को आदित्य हो गये। शत्रुओं के पराभव कामना वाली मेरी मन्त्र रूप वाली से प्रकट हो गयी। अभीवर्त मणि को धारण करने वाला मैं बैरियों की हिंसा में समर्थ होऊँ इसलिए आज आदित्य और मन्त्र प्रकट हुए हैं ॥5॥

सपत्नक्षयणो वृषाभिराष्ट्रो विषासहिः ।

यथाहमेषां वीराणां विराजानि जनस्य च ॥6॥

हे मणे! तेरे बल से मैं शत्रुओं का हनन करने वाला, प्रजाओं को इच्छित फलों से सींचने वाला, अपने राष्ट्र का स्वामी और शत्रुओं को वश में करने वाला बनूँ। यातना देने वाले बैरियों के वीरों पर और उनकी प्रजाओं पर शासन करने में समर्थ हो सकूँ।

## 2.5 शत्रुनाशनम् 2-12

(ऋषि- भरद्वाज। देवता- द्यावापृथिवी अन्तरिक्ष। छन्द-त्रिष्टुप)

द्यावापृथिवी उर्वन्तरिक्षं क्षेत्रस्य पत्न्युरुगायोऽद्भुतः।

उतान्तरिक्षमरु वातगोपं त इह तप्यन्तां मयि तप्यमाने॥1॥

आकाश, पृथ्वी और उनके मध्य में स्थिति अन्तरिक्ष और उनमें वास करने वाले अधिपति देवता, वायु, सूर्य, अग्नि, लोकपाल विष्णु आदि अब इस अभिचार कर्म द्वारा प्रेरणा पाकर शत्रुओं को मारने वाले हों।

इदं देवाः शृणुत ये यज्ञिया स्थभरद्वाजो मह्यमुक्थानि शंसति।

पाशे सबद्धो दुरिते नियुज्यतां यो अस्माकं मन इदं हिनस्ति॥2॥

हे यज्ञ योग्य देवताओं, मेरा निवेदन सुनो कि वषट्कार द्वारा देवताओं को आहुति देने वाले भरद्वाज ऋषि तेरा काम्य वस्तुओं के फल के लिए अभिचार योग्य मन्त्रों का उच्चारण कर रहे हैं। जो शत्रु हमारे श्रेष्ठ कर्मों में लगे मन को दुःखी कर चुका है वह मेरे इस कर्म से मृत्यु रूप दुर्गति को प्राप्त हो।

इदमिन्द्र शृणुहि सोमप यत्त्वा हृदा शोचता जोहवीमि।

वृश्चामि तं कुलिशेनेव वृक्षं अस्माकं मन इदं हिनस्ति॥3॥

हे इन्द्र! तुम्हारा मन सोम पीकर प्रफुल्लित होता है तुम मेरे निवेदन पर ध्यान दो। मैं शत्रुओं कृत दुष्कर्मों के कारण तुम्हें बारम्बार बुलाता हूँ। मैं अपने शत्रु को वृक्ष के समान काटता हूँ।

अशीतिभिस्तिसृभिः सामगेभिरादित्येभिर्वसुभिरंगिरोभिः।

इष्टापूर्तमवतु नः पितृणामामुं ददे हरसा दैव्येन॥4॥

इन्द्र और सोम के उद्गाता से प्रयुक्त स्तोत्र अंगिरा ऋषि, द्वादश आदित्य, अष्टावसु रुद्रों सहित हमारे पुरुषों की जो यज्ञ आदि कामना है और स्मृति विहित कूप व्यापी, तड़ाग आदि हैं, उन कामना-पूर्तियों को अपने अभिचार कर्म द्वारा कृत्या रूप देव कोप से नष्ट करता हूँ।

द्यावापृथिवी अनुमा दीधीथां विश्वे देवासो अनुमा रथध्वम्।

अंकिरसः पितरः सोम्यासः पापमार्छत्वपकामस्य कर्ता॥5॥

हे आकाश, पृथ्वी, तुम शत्रु को तिरस्कृत करने के लिए तेजस्वी बनो। हे विश्व देवताओं, शत्रुओं का संहार करने के लिए तैयार होओ। अंगिराओं, पितरों, तेरे शत्रु को वश में करने को तुम भी तत्पर होओ।

अतीव यो मरुतो मन्यते नो ब्रह्म वा यो निन्दिषत् क्रियमाणम्।

तपूषि तस्मै वृजिनानि सन्तु ब्रह्माद्विषं द्यौरभिसंतपाति॥6॥

हे मरुद्गण, जो हमको ही समझकर हमारे अनुष्ठान को भी निंद्य बताते हैं उनको तुम्हारा तेज रूप आयुध बाधा दे। मेरे कर्म के प्रति द्वेष करने वाले शत्रु को सवितादेव सब ओर से व्यथित करें।

**सप्त प्राणानष्टौ मन्यस्तांस्ते वृश्चामि ब्रह्मणा।**

**अया यमस्य सादनमग्निदूतो अरड.कृतः॥७॥**

तेरे नेत्र आदि सप्त प्राण और कण्ठ की आठ नाड़ियों को तथा अन्य अंगों को अभिचार कर्म द्वारा छिन्न-भिन्न करता हूँ। हे शत्रु तू स्वरूप आभूषण में सजकर यम स्थान को प्राप्त हो।

**आ दधामि ते पदं समिद्धे जातवेदसि।**

**अग्निः शरीरं वेवेष्ट्वसुं वागपि गच्छतु॥८॥**

मैं तेरे चूर्णित शरीर सहित अग्नि में पांव की धूल डालता हूँ, इसके द्वारा यह अग्नि तेरे देह में प्रविष्ट होकर तेरे पाश और वाणी को भी व्याप्त कर ले।

## **2.6 काल सूक्त 19—53**

(ऋषि—भृगुः, काम, छन्द—त्रिष्टुप, बृहती, अनुष्टुप)

**कालो अश्वों बहति सप्तरभिः सहसाक्षो अजरो भूरिरेताः।**

**तमा रोहन्ति कवयो विपश्चितस्तस्य चक्रा भुवनानि विश्वा॥१॥**

कालात्मक वस्तुओं को व्याप्त कर लेने वाले यह अश्वसप्तरश्मि वाले, सहस्र नेत्र वाले नित्य युवा, भूरि वीर्ययुक्त हैं। अश्व—रूप पर बुद्धिमान् ही आरूढ़ होते हैं। उस अश्व के चक्र समस्त लोक हैं।

**सप्त चक्रान् वहति काल एष सप्तास्य नाभीरमृतं न्वक्षः।**

**स इमा विश्वा भुवनान्यंजत् कालः स ईयते प्रथमो नु देवः॥२॥**

कालात्मक संवत्सर सात चक्रों (ऋतुओं) को वहन करता है। यह चक्र इसका नाभिरूप है, अमृत अक्ष है। यही कालात्मक ब्रह्म चराचरात्मक विश्व की रचना और यही उसका नाश करता हुआ स्थित रहता है।

**पूर्णः कुम्भोऽधि काल आहहितस्तं वै पश्यामो बहुधा नु सन्तः।**

**स इमा विश्वा भुवनानि प्रत्यङ् कालं तमाहुः परमे व्योमन्॥३॥**

संसार के कारण— भूत परमेश्वर काल से कुम्भ के समान पूर्णतया व्याप्त हैं। हम साधु पुरुष उस काल को अनेक भेद से देखते हुए उसे व्योम के समान निर्लेप बताते हैं।

**स एव सं भुवनान्याभरत् स एव सं भुवनानि पर्येत्।**

**पिता सन्नभवत् पुत्र एशां तस्माद् वै नान्यत् परमस्ति तेजः॥४॥**

वही काल परमात्मा प्राणियों को उत्पन्न करते हैं, वही भुवनरूप से हैं, वही इनके पिता होते हुए भी पुत्र हो जाते हैं इस काल से श्रेष्ठ अन्य कोई तेज नहीं है।

**कालोऽमूं दिवमजनयत् काल इमाः पृथिवीरुत।**

काले ह भूतं भव्यं चेष्टितं ह वि तिष्ठते ॥5॥

दुलोक और प्राणियों को आश्रय देने वाली पृथिवी को काल ने ही प्रकट किया। भूत, भविष्य और वर्तमान भी इस काल के ही आश्रित हैं।

कालो भूतिमसृजत काले तपति सूर्यः।

काले ह विश्वा भूतानि काले चक्षुर्वि पश्यति ॥6॥

इस संसार की रचना उसी काल ने की। काल की प्रेरणा से ही सूर्य इस विश्व को प्रकाश देते हैं। सब प्राणी काल के ही आश्रित हैं। इन्द्रियों का अधिष्ठाता काल में ही अपनी इन्द्रिय संचालन आदि क्रियाओं को करता है।

काले मनः काले प्राणः काले नाम समाहितम्।

कामेन सर्वा नन्दन्त्यागतेन प्रजा इमाः ॥7॥

उसी काल में सृष्टि रचना का मन रहता है, उसी में संसार में अन्तर्यामी रूप से निवास करने वाला प्राण निवास करता है। आगत काल से ही सब प्रजा अभीष्ट-सिद्धि को प्राप्त कर प्रसन्न होती है।

काले तपः काले ज्येष्ठं काले ब्रह्म समाहितम्।

कालो ह सर्वस्येश्वरो यः पितासीत् प्रजापतेः ॥8॥

काल ही तप है, काल ज्येष्ठ है, काल में ही ब्रह्म प्रतिष्ठित हैं। काल सभी का ईश्वर, पिता और प्रजापति है।

तेनेषितं तेन जातं तदु तस्मिन् प्रतिष्ठितम्।

कालो ह ब्रह्म भूत्वा बिभर्ति परमेष्ठिनम् ॥9॥

यह जगत् काल से ही उत्पन्न हुआ और काल में ही प्रतिष्ठित है। काल ही ब्रह्मा होता हुआ परमेष्ठी ब्रह्म को धारण करता है।

कालः प्रजा असृजत कालो अग्रे प्रजापतिम्।

स्वयम्भूः कश्यपः कालात् तपः कालादजायत ॥10॥

काल ने पहले प्रजापति को उत्पन्न किया, फिर प्रजाओं की रचना की। काल के कश्यप हुए। वह काल स्वयम्भू है।

## 2.7 तक्मन् 6-20

(ऋषि-भृग्वंगिरा, देवता लक्ष्मनाशनम्, छन्द-जगती, पंक्ति)

अग्नेरिवास्य दहत एति शुष्मिण उतेव मत्तो विलपन्नपायति।

अन्यमस्मदिच्छतु कं चिदव्रतस्तपुर्वधाय नमो अस्तु तक्मने ॥1॥

दावाग्नि के समान देह के अंगों को जला देने वाले इस ज्वर की जलन सभी अंगों में व्याप्त होती है। उस समय उन्मत्त के समान प्रलाप करता हुआ मनुष्य संसार से चल देता है। ऐसा ज्वर हमारे पास से हट कर दुराचारियों को प्राप्त हो। इसलिए ज्वर के अभिमानी देवता को नमस्कार है।

नमो रुद्राय नमो अस्तु तक्मने नमो राज्ञे वरुणाय त्विषीमते ।

नमो दिवे नमः पृथिव्यै नम औषधीभ्यः ।।2।।

ज्वर के ताप से रुलाने वाले रुद्र को नमस्कार, ज्वर को भी नमस्कार, वरुण, आकाश, पृथ्वी को नमस्कार तथा पृथ्वी पर उत्पन्न होने वाली औषधियों को भी नमस्कार है।

अयं यो अभिशोचयिष्णुर्विश्वा रूपाणि हरिता कृणोषि ।

तस्मै तेऽरुणाय बभ्रवे नमः कृणोमि वन्याय तक्मने ।।3।।

सब आंगों में व्याप्त, प्रत्यक्ष अनुभव में आते हुए, रक्त को दूषित कर पीला कर देने वाले पित्त ज्वर को नमस्कार करता हूँ।

## 2.8 सामवेद (कौथुम) पूर्वार्चिक, पवमान काण्ड (1–20 मन्त्र, अध्याय 5, प्रथम एवं द्वितीय खण्ड)

### पवमान पर्व

अस्मिन्नध्याये सोमः स्तूयते । उच्चा ते जातमन्धसो दिवि सद्भूम्या ददे ।

उग्र शर्म महि श्रवः ।।1।।

हे सोम तेरे रस का ऊपर जन्म हुआ है द्युलोक में विद्यमान प्रभावशाली सुख को बहुत अन्न को भूमि में जन्मने वाले हम पाते हैं।

स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया इन्द्राय ।

पातवे सुतः ।।2।।

हे सोम इन्द्र के पीने को संपादान किया हुआ तू परम स्वादयुक्त परम हर्ष देने वाली धार से क्षरित हो।।

वृषा पवस्व धारया मरुत्वते च मत्सरः ।

विश्वा दधानओजसा ।।3।।

हे सोम! तुम स्तोताओं के मनोरथों की वर्षा करते हुए अपनी धारा से कलश में आइये और आने पर जब हम तुम्हें इन्द्र को अर्पण करें तब जिसके मरुत् सहायक हैं ऐसे तिस इन्द्र के निमित्त सकल धनों को अपने बल से धारण करते हुए मदकारी होओ।।

यस्ते मदो वरेरायस्तेना पवस्वान्धसा ।

देवावीरघशंसहा ।।4।।

हे सोम तेरा देवताओं का इच्छित राक्षसों का नाशक परमश्रेष्ठ हर्षदायक जो रस है उस आदर योग्य रस से कलश में आओ।

तिस्रो वाच उदीरते गावो मिमन्ति धेनवः ।

हरिरेति कानिक्रदत् ॥5॥

ऋत्विज् ऋक् आदि भेद से तीन प्रकार की स्तुतियों को उच्चारण करते हैं दूध से तृप्त करने वाली गौएँ दुहने के निमित्त रँभाती हैं। हरी-सोम शब्द करता हुआ कलश में जाता है।

इन्द्रायेन्द्रो मरुत्वते पवस्व मधुमप्तमः ।

अर्कस्य योनिमासदम् ॥6॥

हे सोम अत्यन्त मधुर तू पूजनीय यज्ञस्थान में विराजमान होने को इन्द्र के अर्थ कलश में प्राप्त हो।

असाव्यं शुर्मदायाप्सु दक्षो गिरिष्ठाः ।

श्येनो न योनिमासदत् ॥7॥

पर्वत में उत्पन्न हुआ सोम हर्ष के अर्थ संपादन किया गया जलों में वृद्धि को प्राप्त होता है। जैसेश्येन पक्षी वन से आकर अपने स्थान में स्थित होता है तैसे ही यह सोम अपने स्थान में स्थित होता है।

पवस्व दक्षसाधनो देवेभ्यः पीतये हरे ।

मरुभ्यो वायवे मदः ॥8॥

हे पाप करने वाले सोम! बल का साधक मदकारी तू इन्द्रादि देवताओं के पौने के निमित्त वायु देवता के पौन के निमित्त कलश में पूर्ण हो।।

परि स्वानो गिरिष्ठाः पवित्रे सोमो अक्षरत् ।

मदेषु सर्वधा असि ॥9॥

यह सोम शुद्ध पात्र में पूर्ण हो रहा है पर्वत पर उत्पन्न हुआ संपादन किया जाता हुआ तू स्तोता आदिकों में सकल अभीष्टों का दाता है।

परिप्रिया दिवः कविर्वयांसि नप्त्योर्हितः ।

स्वानैर्याति कविक्रतुः ॥10॥

बुद्धिवद्धेक सोम अधिषवण के फलकों में स्थापित हुआ द्युलोक के प्यारे जाने बालों को अध्वर्युओं के सहित प्राप्त होता है।

प्र सोमासो मदच्युतः श्रवसे नो मघोनाम् ।

सुता विदथे अक्रमुः ॥11॥

आनन्द को बरसाने वाले सोम अभिषुत होने पर हवि वाले हमारे यज्ञ में अन्न और कीर्ति के निमित्त पात्रों में प्राप्त होते हैं।

प्र सोमासो विपश्चितोऽपो नयन्त ऊर्मयः ।



वनानि महिषा इव ॥12॥

बुद्धिवर्धक सोम जल की तरंगों की समान जैसे पशु वन में जाते हैं तैसे पात्रों में प्राप्त होता है।

पवस्वेन्द्रो वृषा सुतः कृधी नो यशसो जने ।

विश्वा अप द्विषो जहि ॥13॥

हे सोम खींचा हुआ तू मनोरथों को पूर्ण करने वाला होता हुआ धारा से पात्र में प्राप्त हो देश में हमें यश वाला कर सब शत्रुओं को नष्ट कर ॥

वृषा ह्यसि भानुना द्युमन्तं त्वा हवामहे ।

पवमान स्वर्दशम् ॥14॥

हे सोम तू निश्चय इच्छित फलों की वर्षा करने वाला है, इस कारण हे पवित्र करने वाले सोम सबके द्रष्टा तेज से छिपते हुए तुम्हें यज्ञों में आह्वान करते हैं।

इन्दुः पविष्ठ चेतनः प्रियः कवीनां मतिः ।

सृजदश्वं रथीरिव ॥15॥

चेतनता देने वाला देवताओं का प्यारा सोम ऋत्विजों की स्तुति से पात्र में पूर्ण होता है। घोड़े की रथी जैसे-जैसे ही धारा को रचता है।

असृक्षत प्र वाजिनो गप्या सोमासो अश्वया ।

शुक्रासो वीरयाशवः ॥16॥

बलवान् वेगवान् सोम गौ की इच्छा से घोड़ों की इच्छा से पुत्रों की इच्छा से ऋत्विजों के द्वारा अधिकता से रचे गये हैं।

पवस्व देव आयुषगिन्द्रं गच्छतु ते मदः ।

वायुमा रोह धर्मणा ॥17॥

हे सोम प्रकाशवान् तू धारा से पात्र में पूर्ण हो तेरा आनन्दायक रस मिलता हुआ इन्द्र को प्राप्त हो धारक रस रूप से वायु को प्राप्त हो।

पवमानो अजीजनदिवश्चित्रं न तन्यतुम् ।

ज्योतिर्वैश्वानरं बृहत् ॥18॥

सामने बड़े भारी वैश्वानर नाम वाले तेज को द्युलोक के विचित्र वज्र को समान उत्पन्न किया है।

परि स्वानास इन्दवो मदाय बर्हणा गिरा ।

मधो अर्षन्ति धारया ॥19॥

निचोड़े जाते हुए दिपते हुए बड़ी स्तुतिरूप वाणी से मदकारी सोम धारा से देवताओं के मद के अर्थ दशापवित्रसे नीचे टपकते हैं।

परि प्रासिष्यदत्कविः सिन्धोरुर्मावधि श्रितः ।

कारुंभिभ्रत्पुरुस्पृहम् ।।20।।

बुद्धिवर्धक सिन्धु की तरंग में आश्रित हुआ अनेकों के स्पृहायोग्य स्तोताको धारण करता हुआ सोम पात्र में टपकता है।

## 2.9 शुक्ल यजुर्वेद— शिवसङ्कल्पसूक्तम् 1—16

(ऋषि, याज्ञवल्क्य । देवता, मनस । छन्द त्रिष्टुप)

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवेति ।

दूरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ।।1।।

**पदपाठ**—यत् । जाग्रतः । दूरम् । उदेतीत्युत् ऐति । दैवम् । तत् । ऊँ इत्यू । सुप्तस्य । तथा । एव । एति । दूरंगममिति दूरम् गमम् । ज्योतिषाम् ज्योतिः । एकम् । तत् । मे । मनः । शिवसंकल्पमिति शिवसंकल्पम् । अस्तु ।।

**अन्वय**— जाग्रतः यत् दैव (मनः) दूरम् उत् एति, सुप्तस्य तत् उ तथैव एति । दूरंगमं ज्योतिषाम् एकं ज्योतिः मे तत् मनः शिवसंकल्पम् अस्तु ।

**शब्दार्थ**— जाग्रतः ३ जागते हुए का । यत् ३ जो । दैवम् ३ दिव्य, प्रकाशवान् (मनः ३ मन) । दूरम् ३ दूर । सुप्तस्य ३ सोते हुए का । उ ३ ही । तथाएव ३ उसी प्रकार से । दूरंगमम् ३ दूरगामी, दूर जाने वाला । ज्योतिषाम् ३ ज्योतियों में । एकम् ३ अद्वितीय । ज्योतिः ३ प्रकाश रूप । शिवसंकल्पम् ३ शुभ संकल्पों से युक्त, शुभ संकल्पों वाला । अस्तु ३ हो जाय ।

**अनुवाद**— जागते हुए (पुरुष) का जो दिव्य (अर्थात् दैवी शक्ति से युक्त) (मन) दूर चला जाता है, सोते हुए (पुरुष) का वही (मन) उसी प्रकार से आ जाता है, दूरगामी (तथा) ज्योतियों में अद्वितीय ज्योति—स्वरूप वह मेरा मन शुभ संकल्पों वाला हो जाय ।

येन कर्माण्युपसो मनीषियों यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः ।

यदपूर्वं यक्षसन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ।।2।।

**पदपाठ**— येन । कर्माणि । अपसः । मनीषिणः । यज्ञे । कृण्वन्ति । विदथेषु । धीराः । यत् । अपूर्वम् । यक्षम् । अन्तरित्यन्तः प्रजानामिति प्र जानाम् । तत् । मे । मनः । शिवसंकल्पम् । अस्तु ।।

**अन्वय**—येन अपसः मनीषिणः धीराः यज्ञे विदथेषु कर्माणि कृण्वन्ति । यत् प्रजानाम् अन्तः अपूर्वं यक्षं, तत् ये मनः शिवसंकल्पम् अस्तु ।

**शब्दार्थ**—मनीषिणः ३ मनीषी लोग, मेधावी लोग। धीराः ३ धीर लोग। यज्ञे ३ यज्ञ में। विदथेषु ३ यज्ञ के विधि-विधानों में, यज्ञ-सम्बन्धी ज्ञानों में। कर्माणि कृण्वन्ति ३ कर्म करते हैं। यत् ३ जो। जो। प्रजानाम् ३ प्रजाओं के, प्राणियों के। अन्तः ३ अन्तर्भाग में। अपूर्वम् ३ अपूर्व, सर्वप्रथम, सर्व-प्रधान। यक्षम् ३ पूज्य।

**अनुवाद**—जिसके द्वारा कर्मनिष्ठ, मेधावी (तथा) धीर लोग यज्ञ में (एवं) यज्ञ के विधि-विधानों में कर्म करते हैं, जो प्रजाओं के अन्तर्भाग में सर्व प्रधान रूप से पूज्य है, वह मेरा मन शुभसंकल्पों वाला हो जाय।

**यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्जोतिरन्तरमृतं प्रजासु।।**

**यस्मान्न ऋते किंचन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।३।।**

**पदपाठ**— यत्। प्रज्ञानमिति प्रज्ञानम्। उत। चेतो। धृतिश्च। यत्। ज्योतिः। अन्तः। अमृतम्। प्रजास्वित् प्रजासु। यस्मात्। न। ऋते। किम् चन। कर्म। क्रियते। तत्। मे। मनः। शिवसंकल्पम् अस्तु।

**अन्वय**—यत् प्रज्ञानम् उत चेतः धृतिः च यत् प्रजासु अन्तः अमृतं ज्योतिः। यस्मात् ऋते किंचन कर्म न क्रियते, तत् मे मनः शिवसंकल्पम् अस्तु।

**शब्दार्थ**—यत् ३ जो। प्रज्ञानम् ३ उत्कृष्ट ज्ञान का जनक, विशेषज्ञान का जनक। उत ३ और। चेतः ३ अपकृष्ट ज्ञान का जनक, सामान्य ज्ञान का जनक। धृतिः ३ धैर्य का आधार-स्वरूप, धैर्य। प्रजासु ३ प्राणियों में। अन्तः ३ वर्तमान, स्थित, (अन्तःकरण में)। अमृतम् ३ अम, अमृतस्वरूप। ज्योतिः ३ ज्योति, प्रकाश। यस्मात् ऋते ३ जिसके बिना। किंचन कर्म न क्रियते ३ कोई कर्म नहीं किया जाता।

**अनुवाद**—जो उत्कृष्ट ज्ञान का जनक है तथा (जो) अपकृष्ट (सामान्य) ज्ञान का जनक है, (जो) धैर्य का आधार-स्वरूप, प्राणियों के अन्तःकरण में (विद्यमान) अमृत ज्योति (स्वरूप) है, जिसके बिना कोई (भी) कर्म नहीं किया जाता, वह मेरा मन शुभसंकल्पों वाला हो जाय।

**येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत् परिगृहीतममृते न सर्वम्।।**

**येन यज्ञस्तायते सप्तहो ता तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।४।।**

**पदपाठ**—येन। इदम्। भूतम्। भुवनम्। भविष्यत्। परिगृहीतमिति परिगृहीतम्। अमृतेन। सर्वम्। येन। यज्ञः। तायते। सप्तहोतेति सप्तहोता। तत्। मे। मनः। शिवसंकल्पम्। अस्तु।।

**अन्वय**—ये अमृतेन (मनसा) इदं भूतं भुवनं भविष्यत् सर्वं परिगृहीतम्। येन सप्तहोता यज्ञः तायते तत् मे मनः शिवसंकल्पम् अस्तु।

**शब्दार्थ**—येन अमृतेन ३ जिस शाश्वत के द्वारा, जिस अविनाशी के द्वारा। भूतम् ३ भूतकालीन। भुवनम् ३ वर्तमानकालीन। भविष्यत् ३ भविष्यत्कालीन। सर्वम् ३ सब कुछ। परिगृहीतम् ३ भली-भांति ग्रहण किया गया है, ज्ञात किया जाता है। येन ३ जिसके द्वारा। सप्तहोता ३ सात होताओं वाला। यज्ञ ३ यज्ञ। तायते ३ सम्पादित किया जाता है।

**अनुवाद**—जिस शाश्वत (मन) के द्वारा भूतकालीन, वर्तमानकालीन (एवं) भविष्यत्कालीन सब कुछ भली-भांति ज्ञात किया जाता है, जिसके द्वारा सात होताओं (होतृ, पोतृ, मैत्रावरुण, ग्रावस्तुत, ब्राह्मणाच्छंदसी, अच्छावाक्, अग्नीद) से युक्त यज्ञ सम्पादित किया जाता है, वह मेरा मन शुभ संकल्पों वाला हो जाय।

**यस्मिन्नृचः साम यजूषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः।**

**यस्मिश्चित्त सर्वमोतंप्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।5।।**

**पदपाठ**—यस्मिन्। ऋचः। सामऽयजूषि। यस्मिन्। प्रतिस्थितेतिप्रति स्थिता। रथनाभाविवेति। रथनाभौ इव। अराः। यस्मिन्। चित्तम्। सर्वम्। ओतम्। प्रजानामिति प्रजानाम्। तत्। मे। मनः। शिवसंकल्पम्। अस्तु।।

**अन्वय**—अस्मिन् ऋचः यस्मिन् सामयजूषि रथनाभौ अराः इव प्रतिष्ठिताः यस्मिन् प्रजानां सर्वं चित्तम् ओतं तत् मे मनः शिवसंकल्पम् अस्तु।

**शब्दार्थ**—यस्मिन् ऋचः जिस (मन) के अन्तर्गत ऋचः ऋचायें, ऋग्वेद के मन्त्र। साम ऋ सामवेद के मन्त्र। यजूषि यजुर्वेद के मन्त्र। रथनाभौ रथ की नाभि में। अराः इव अरे की भाँति। प्रतिष्ठिता प्रतिष्ठित हैं। प्रजानाम् प्राणियों का सर्वम् सम्पूर्ण। चित्तम् चित्त-ज्ञान। ओतम् अनुस्यूत हैं, बिंधा हुआ है।

**अनुवाद**—जिस (मन) के अन्तर्गत ऋग्वेद के मन्त्र, जिसके अन्तर्गत सामवेद के मन्त्र एवं यजुर्वेद के मन्त्र प्रतिष्ठित हैं, जिसमें प्राणियों का सम्पूर्ण (अर्थात् सर्व-पदार्थ-विषयक) ज्ञान अनुस्यूत है, वह मेरा मन शुभसंकल्पों वाला हो जाय।

**सुषारथिरश्वानिव यन्मनु प्यान्ने नीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव।**

**हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।6।।**

**पदपाठ**—सुषारथिरितिसु सारथिः। अश्वानिवेत्यश्वान् इव। यत् मनुष्यान्। ने नीयते। अभीशुभिरित्यभीशुभिः। वाजिनइवेति वाजिन इव। हृत्प्रतिस्थमितिहृत् प्रतिस्थम्। यत्। अजिरम्। जविष्ठम्। तत्। मे। मनः। शिवसंकल्पम्। अस्तु।।

**अनुवाद**—जो (मन) मनुष्यों को उसी प्रकार (ले जाता है) जैसे अच्छा सारथि अश्वों को ले जाता है, लगामों से घोड़ों को जिस प्रकार ले जाया जाता है उसी प्रकार (जो मन मनुष्यों को कर्मों में प्रेरित करता है), जो हृदयस्थ, जरारहित एवं अतिशय वेगवान् है वह मेरा मन शुभसंकल्पों वाला हो जाय।

## 2.10 सारांश—

इस इकाई में आपने अथर्ववेद, सामवेद, यजुर्वेद के सूक्तों में प्रतिपाद्य विषयों का परिचय प्राप्त किया है। सौमनस्य के अन्तर्गत श्रेष्ठ मन वाला होने की कामना की गयी है। राष्ट्राभिवर्धनम् में राष्ट्र की समृद्धि के लिये इन्द्रदेव प्रार्थना की गई है। शत्रुनाशनम् सूक्त में शत्रु को नष्ट करने तथा शत्रु से स्वयं रक्षित होने के सम्बन्ध में विभिन्न देवताओं से निवेदन किया गया है। कालसूक्त के अन्तर्गत काल की श्रेष्ठता का वर्णन किया गया है। तक्मन् में ज्वर पीड़ा के निदान की प्रार्थना की गई है। सामवेद के पवमान काण्ड

में सोम रस के गुणों का विस्तार से वर्णन किया गया है। शिवसंकल्प सूक्त में कल्पना के सम्बन्ध में प्रार्थना की गई है।

### 2.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें—

1. वैदिक सूक्त संग्रह।
2. अथर्ववेद— पं० श्रीराम शर्मा आचार्य।
3. सामवेद— पं० श्रीराम शर्मा आचार्य।
4. यजुर्वेद— पं० श्रीराम शर्मा आचार्य।
5. सामवेद संहिता— पं० रामस्वरूप शर्मा गौड़

### 2.12 स्वपरख प्रश्न / अभ्यास—

1. सौमनस्य सूक्त में किन-छन्दों का प्रयोग किया गया है?
2. राष्ट्रभिर्वर्धनम् सूक्त के देवता का नाम बताइये?
3. शत्रुनाशनम् सूक्त के ऋषि के सम्बन्ध में प्रकाश डालिये?
4. कालसूक्त किस वेद का सूक्त है?
5. तक्मन् सूक्त में किस छन्द का प्रयोग किया गया?
6. यजुर्वेद की शाखाओं के नाम बताइये?
7. पवमान काण्ड के प्रतिपाद्य विषय पर प्रकाश डालिये?

## इकाई—3

### इकाई की रूपरेखा

- 3.1 उद्देश्य
- 3.2 प्रस्तावना
- 3.3. निरुक्त प्रथम अध्याय (व्याख्या प्रश्न एवं निर्वचन)
- 3.4 सारांश
- 3.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें
- 3.6 स्वपरख प्रश्न / अभ्यास

#### 3.1 उद्देश्य –

इस इकाई के अध्ययन से आप वैदिक शब्दों के संग्रह की व्याख्या से परिचित हो सकेंगे। निरुक्त के अध्ययन से आप वैदिक शब्दों की व्याख्या का कौशल भी प्राप्त कर सकेंगे।

#### 3.2 प्रस्तावना

इस इकाई में निरुक्त का निघण्टु नाम कैसे पड़ा, निघण्टु की व्याख्या, निर्वचन एवं पद के प्रकार, वाक्य में भाव की प्राधानता, नाम 'आख्यात' के सामान्य एवं विशेष रूप का प्रदर्शन, औदुम्बरायण का शब्द प्रयोग की आवश्यकता, लौकिक तथा शब्द नियतत्व पक्ष, शब्द प्रयोग की आवश्यकता, लौकिक तथा वैदिक भाषाओं की समानता, वैदिक मंत्रों की आवश्यकता, भाव के प्रकार, आचार्य गार्ग्य का वाचकत्व पक्ष आदि की प्रस्तुति आपका ज्ञान संवर्धन करेगी।

#### 3.3 निरुक्त प्रथम अध्याय (व्याख्या प्रश्न एवं निर्वचन)

**मूल**—सामान्नायः सामान्नातः। स व्याख्यातव्यः। तम् इमं सामान्नायं निघण्टव इत्याचक्षते।

**अनुवाद**—(वैदिक शब्दों का) संग्रह संगृहीत हो चुका। (अब) उसकी व्याख्या करनी है। इस संग्रह को (आचार्य लोग) 'निघण्टु' कहते हैं।

**व्याख्या**—'सामान्नाय' शब्द 'सम्' और 'आङ्' उपसर्गों के साथ 'म्ना' धातु से 'कर्म' कारक में 'घञ्' प्रत्यय करके निष्पन्न माना गया है। 'सम्' का अर्थ है 'सम्यक्' 'आ' का अर्थ है एक विशिष्ट क्रम में तथा 'म्ना' धातु का अर्थ है 'अभ्यास' अर्थात् किसी विषय का बार-बार विचार करना, मनन करना इत्यादि। अतः 'सामान्नाय', शब्द का अर्थ हुआ वह शब्दकोष जिसमें एक विशेष दृष्टि से, बार-बार विचार करके शब्दों का संग्रह किया गया है। यहाँ यास्क ने 'सामान्नाय' शब्द से जिस कोष का उल्लेख किया है वह निरुक्त का व्याख्येय ग्रन्थ 'निघण्टु' है, जिसका आरम्भ 'गौ' शब्द से तथा अन्त 'देवपत्नी' शब्द से होता है। यह पाँच अध्यायों तथा तीन काण्डों (नैघण्टुक, नैगम और देवत) में विभक्त है। **टिप्पणी**—विशिष्ट संग्रह के अर्थ में अन्यत्र भी 'सामान्नाय' शब्द का प्रयोग मिलता है। जैसे तैत्तिरीय प्रातिशाख्य में (1,1) में 'वर्ण-सामान्नाय', अनुवाकानुक्रमणी (1,6) में 'पदाक्षर-सामान्नाय' तथा पातंजल महाभाष्य में प्रथमाध्याय प्रथम पाद के द्वितीय आह्निक में 'अक्षर सामान्नाय' का प्रयोग मिलता है।

**स व्याख्यातव्यः**—यहाँ 'सः' का अभिप्राय है वह 'सामान्नाय' अथवा वैदिक शब्दों का संग्रह, जिसका सामान्नाय यास्क ने किया था 'व्याख्यातव्यः' शब्द में 'तव्यत्' प्रत्यय अर्ह' अथवा योग्य अर्थ को कहने के लिए प्रयुक्त हुआ है। द्र०—'आर्हे कृत्यतृचश्च' अर्थात् 'अर्ह' अर्थ को कहने के लिए 'कृत्य' तथा 'तृच' प्रत्ययों का प्रयोग होता है 'कृत्य' कहे जाने वाले प्रत्ययों में 'सामान्नाय' या शब्द संग्रह जो व्याख्याह (व्याख्या के योग्य) है।

**तम् इमं.....आचक्षते।**

इस वाक्य में यह बताया गया है कि 'सामान्नाय' अथवा वैदिक शब्दों के कोष को आचार्य लोग 'निघण्टु' कहते हैं। यहाँ भी 'आचक्षते' क्रिया का कर्ता नहीं कहा गया है। इसलिए 'आचार्याः' जैसे किसी शब्द का अध्याहार करना होगा।

**निघण्टु शब्द की व्युत्पत्ति—**

**मूल**—निघण्टवः कस्मात्? निगमा इमे भवन्ति! छान्दोभ्यः समाहृत्य समाहृत्य सामान्नाताः। ते निगन्तव एव सन्तो निगमनात् निघण्टव उच्यन्ते इत्यौपमन्यवः। अपि वा आ हननाद् एव स्युः। समाहता भवन्ति। यद् वा समाहता भवन्ति।

**अनुवाद**—'निघण्टवः' नाम कैसे पड़ा? ये (संगृहीत शब्द) अर्थबोधक होते हैं—दोनों से चुन-चुनकर शब्द इकट्ठे किये गये होते हैं। (इसलिए) वे (शब्द) 'निगन्तु' (अर्थ बोधक) होते हुए ही, अर्थ बोधन के कारण 'निघण्टवः' (नाम से) कहे जाते हैं। यह औपमन्यव का विचार है। अथवा 'आहत' (मर्यादा एवं विभाग के

साथ पठित) होने के कारण ही (इन शब्दों के नाम 'निघण्टु') हुए हों (क्योंकि ये शब्द 'समाहृत' (एक साथ पठित) होते हैं। अथवा (ये शब्द वेदों से) चुने हुए होते हैं (इसलिए इन्हें 'निघण्टुः') कहा जाता है।

**व्याख्या—** 'सामान्याय' (वैदिक कोष) के शब्दों को निघण्टुः क्यों कहा जाता है या उन सभी शब्दों के एकत्व के आधार पर इनके समूहभूत 'सामान्याय को निघण्टु' क्यों कहा जाता है इस बात को बताने के लिए 'निघण्टुः' शब्द के यहाँ तीन निर्वचन दिये जा रहे हैं। शब्दों का निर्वचन करते हुए कभी-कभी निरुक्त में उस शब्द के साथ 'कस्मात्' शब्द का प्रयोग करके उसके उत्तर में एक या अनेक संभावित धातु या धातुओं का निर्देश किया गया है। यहाँ भी 'निघण्टु' शब्द के विविध निर्वचन प्रस्तुत करने के लिए ही यास्क ने 'निघण्टुः' कस्मात्? यह प्रश्न प्रस्तुत किया है। इस प्रश्न के दो अभिप्राय हैं— एक यह कि 'निघण्टु' शब्द किस धातु से बनेगा? तथा दूसरा यह कि इस 'सामान्याय' का 'निघण्टु' नाम क्यों पड़ा, उसकी किस विशेषता के कारण 'निघण्टु' नाम दिया गया? यों इन दोनों प्रश्नों में कोई विशेष अन्तर नहीं है।

**प्रथम निर्वचन—**प्रथम निर्वचन के अनुसार 'निघण्टु' शब्द 'नि' उपसर्ग पूर्वक 'गम्' धातु से बना है। चूँकि 'सामान्याय' में बड़ी सावधानी के साथ वेदों से शब्द चुन-चुन कर इकट्ठे किये जाते हैं इसलिए इन शब्दों के अर्थ—ज्ञान के द्वारा वैदिक मंत्रों के अर्थों का बोध होता है। अतः अर्थ बोधक होने के कारण ये शब्द 'निगम' के (नि+गम्+अच्) अर्थात् अर्थ के निश्चायक होते हैं। इस कारण 'निगम' के पर्याय के रूप में 'नि+गम्' के साथ औणादिक 'तुन्' प्रत्यय लगाकर 'निगन्तु' शब्द और उसके बाद 'त' का तथा 'ग' का 'घ' होकर 'निघण्टु' शब्द बना। यास्क ने यह प्रथम व्युत्पत्ति, निरुक्त के प्राचीन आचार्य औपमन्यव के अनुसार दी है।

**टिप्पणी—**प्र० बी०के० राजवाड़े के अनुसार यहाँ पाठ का क्रम सम्भवतः निम्न रूप में रहा होगा— निघण्टुः कस्मात्? निम्नात्। निगमा इमे भवन्ति। छन्दोभ्यः समाहृत्यः समाहृत्य सामान्यायः। ते निगन्तव एव सन्तो निगमानात् निघन्तव उच्यन्ते औपमन्यवः।

**द्वितीय निर्वचन—**आ हननाद् एव स्युः समाहृता भवन्ति— के अनुसार 'निघण्टु' शब्द 'सम्' तथा 'आ' उपसर्गों के साथ 'हन्' धातु से निष्पन्न होगा। 'समाहनन' तथा 'सामान्याय' का इस प्रसंग में लगभग एक ही अर्थ है, और वह है मर्यादापूर्वक विशिष्ट विभाजन और दृष्टिकोण के साथ शब्दों का एक क्रम से संग्रह। इस निर्वचन में हेतु है 'समाहृता भवन्ति', अर्थात् निघण्टु के शब्द सम्यक् रूप से मर्यादापूर्वक एक साथ पढ़े गये हैं।

**निघण्टु में शब्दों के चार विभाग—**

**मूल—**तद् यानि चत्वारि पदजातानि नामाख्याते चोपसर्ग—निपाताश्च तानीमानि भवन्ति।

**अनुवाद—**तो जो चार (प्रकार के) प्रसिद्ध पद, नाम, आख्यात, उपसर्ग तथा निपात हैं वे (उस प्रकार के ही) ये ('सामान्याय' के पद भी) हैं।



**व्याख्या**—इस वाक्य में यह कहा गया है कि भाषा में चार प्रकार के प्रसिद्ध पद हैं— नाम, आख्यात्, उपसर्ग तथा निपात— उन्हीं चार प्रकार के पदों का इस 'सामान्याय' में भी संग्रह किया गया है। इसलिए 'इमानि' का अर्थ करना चाहिये 'सामान्याय' के पद अथवा 'शब्द', अभिप्राय यह है कि इन चार विभागों के अन्तर्गत ही बस 'सामान्याय' के सभी शब्द आ जाते हैं— कोई भी ऐसा शब्द नहीं है जो इन चार विभागों के अन्तर्गत न आ सके।

**चत्वारि पदजातानि**—पद कितने प्रकार के माने जायें, इस विषय में संस्कृत के वैयाकरणों में विवाद पाया जाता है। दुर्ग का कहना है कि 1. ऐन्द्र व्याकरण में एक प्रकार का ही पद माना गया था। संभवतः अर्थः पदम् इस सूत्र में यह परिभाषा की गयी थी कि अर्थ के वाचक सभी शब्द पद हैं। 2. कुछ अन्य आचार्य दो प्रकार के पद मानते हैं— सुबन्त तथा तिङन्त। ये विद्वान् उपसर्गों तथा निपातों के विषय में यह कह कर कि इनकी विभक्तियां अब लुप्त हो गयी हैं, इन दोनों का अन्तर्भाव 'नाम' पदों में ही कर लेते थे। 3. कुछ अन्य तीसरे विद्वान् उपसर्ग तथा निपातों को एक मान कर पदों के तीन भेद मानते हैं। इनका कहना है कि 'अ' आदि उपसर्ग भी वस्तुतः निपात ही हैं। धातु के साथ प्रयुक्त होकर वे निपात होते हुए भी उपसर्ग अथवा जातिसंज्ञक बन जाते हैं। 4. कुछ अन्य यास्क आदि विद्वान् पदों के उपर्युक्त चार प्रकार मानते हैं। 5. इनसे भिन्न कुछ और विद्वान् नाम, आख्यात्, उपसर्ग, निपात तथा कर्मप्रवचनीय इन पाँच संज्ञाओं के आधार पर पाँच प्रकार के पद मानते हैं।

**टिप्पणी**—यहाँ प्रो० राजवाड़े ने एक विचारणीय प्रश्न यह प्रस्तुत किया है कि यास्क जिस 'सामान्याय' अथवा निघण्टु की व्याख्या करने जा रहे हैं उसमें तो पदों के केवल दो ही प्रकार मिलते हैं— 'नाम' (प्रातिपदिक) शब्द और 'आख्यात्' (तिङन्त शब्द)। उपसर्गों तथा निपातों का संकलन यहाँ नहीं दिखाई देता।

### **'नाम' और 'आख्यात्' की परिभाषा—**

**मूल**—तत्रैतन नामाख्यातयोर् लक्षणं प्रदिशन्ति। भावप्रधानम् आख्यातम्। सत्यप्रधानानि नामानि।

**अनुवाद**—उन (चार प्रकार के पदों) में से नाम और आख्यात् की (निम्न) परिभाषा (आचार्य लोग) बताते हैं जिन (पदों) में भाव (क्रिया) की प्रधानता हो वह 'आख्यात्' है तथा जिनमें सत्व (द्रव्य अथवा सिद्ध भाव) की प्रधानता हो वह 'नाम' है।

**व्याख्या**—यहाँ 'नाम' और 'आख्यात्' पदों की परिभाषा प्रस्तुत की जा रही है। 'प्रदिशन्ति' का अर्थ है 'उपदेश' करते हैं— बताते हैं। 'प्र' उपसर्गपूर्वक 'दिश्' धातु का एक अर्थ 'उपदेश' भी होता है। यहाँ कहा यह गया कि नामाख्यातयोर् लक्षणं प्रदिशन्ति अर्थात् 'नाम' तथा 'आख्यात्' का लक्षण बताते हैं जिसमें पहले 'नाम' तथा फिर 'आख्यात्' को रखा गया था क्योंकि 'नाम' शब्द 'आख्यात्' शब्द की अपेक्षा छोटा है। परन्तु लक्षण देते समय 'आख्यात्' का लक्षण पहले इसलिए दिया गया कि सभी 'नामों' के मूल में 'आख्यात्' (धातु)

ही विद्यमान रहता है ऐसा प्रायः सभी नैरुक्त मानते हैं। इसके अतिरिक्त 'आख्यात' की प्रधानता इसलिए भी है कि एक 'आख्यात' (धातु) से अनेक 'नाम' पद निष्पन्न होते हैं।

**भाव-प्रधानम् आख्यातम्-** यहाँ 'आख्यात' का अभिप्राय है 'व्रजति' 'पठति' इत्यादि तिङन्त या क्रिया वाचक पद। यों तो 'आख्यात' इस पद का प्रयोग कहीं-कहीं केवल धातु के लिए अथवा कहीं-कहीं केवल 'तिङ्' विभक्तियों के लिए भी हुआ है। परन्तु अधिकतर 'आख्यात' शब्द का प्रयोग 'तिङन्त' पद के लिए ही होता है। 'भावप्रधानम्' शब्द में 'बहुब्रीहि' समास है—'भावः प्रधानं यत्र' अर्थात् जहाँ 'भाव' (क्रिया) की प्रधानता हो वह आख्यात (तिङन्त पद) है। यद्यपि 'भाव' शब्द के भी अनेक अर्थ हैं परन्तु यहाँ इसका अभिप्राय है 'साध्यभाव' या क्रिया। इस प्रकार 'आख्यात' की परिभाषा हुई जिन पदों के अर्थों में साध्य-भाव (क्रिया) की प्रधानता हो वे 'आख्यात' हैं। 'आख्यात' शब्द की व्युत्पत्ति भी कोषकारों ने यह की है कि 'आख्याते' प्रधानभावेन क्रिया अप्रधानभावेन च द्रव्यं यत्रतद् आख्यातम् अर्थात् जहाँ प्रधान रूप से क्रिया और गौण रूप से द्रव्य का कथन हो वह आख्यात है। 'आख्यात' शब्दों में प्रधान रूप से क्रिया की प्रतीति होती है इसको प्रमाणित करने के लिए व्याख्याकारों ने निम्न हेतु प्रस्तुत किये हैं—

1. 'पचति' या 'व्रजति' इत्यादि तिङन्त या आख्यात पदों के प्रयोग से क्रिया का पूर्ण निश्चय हो जाता है कि यहाँ पकाने अथवा जाने की क्रिया हो रही है जबकि 'कर्ता' इत्यादि कारकों का अथवा द्रव्य का निश्चय नहीं हो पाता। उसका निश्चय तो तभी होता है जब उस कारक अथवा द्रव्य का नाम लिया जाता है।
2. 'देवदत्तः किं करोति?' इस रूप में जब किसी क्रिया के विषय में प्रश्न किया जाता है तब उसका उत्तर 'पठति' जैसे किसी 'आख्यात' शब्द द्वारा ही दिया जाता है 'नाम' शब्द द्वारा नहीं।

**सत्त्वप्रधानानि नामानि-** 'नाम' शब्दों की परिभाषा यह की गयी कि जिनमें 'सत्त्व' अर्थात् द्रव्य की प्रधानता हो वे 'नाम' शब्द हैं। यहाँ भी पहले जैसे ही हेतु दिये जा सकते हैं।

1. देवदत्त आदि 'नाम' (प्रातिपदिक) शब्दों का उच्चारण होने पर देवदत्त आदि द्रव्य का ही प्रधान रूप से बोध होता है क्योंकि देवदत्त द्रव्य का तो निश्चय इस शब्द से हो जाता है, परन्तु वह क्या करता है— पढ़ता है, सोता है या खाता है? इन क्रियाओं का निश्चय नहीं हो पाता।
2. 'कः पठति?' इस प्रकार के द्रव्यविषयक प्रश्न के उत्तर में 'रामः' जैसे किसी 'नाम' शब्द का ही प्रयोग किया जाता है।
3. जब कभी किसी प्रातिपदिक शब्द का प्रयोग किया जाता है तो वह लिंग तथा संख्या से युक्त होता है। विद्वानों ने लिंग तथा संख्या से युक्त होने को ही 'सत्त्व' कहा है। **लिङ्-संख्यानितं द्रव्यं सत्त्वम् इत्यभिधीयते।**

**वाक्य में भाव की प्रधानता-**

**मूल**—तद यत्रोभे, भावप्रधाने भवत। पूर्वापरिभूतं भावम् आख्यातेन आचष्टे, व्रजति पचतीति उपक्रम—प्रभृत्यपवर्गपर्यन्तम्। मूर्तसत्त्वभूतं सत्त्वनामभिः।

**अनुवाद**—जहाँ दोनों ('नाम' तथा 'आख्यात' पद) होते हैं (वहाँ अर्थात् वाक्य में दोनों) क्रिया प्रधान होते हैं 'व्रजति' 'पचति' जैसे ('आख्यात' पदों द्वारा (वक्ता) पहले तथा पीछे (एक विशेष क्रम से) होने वाली आरम्भ से लेकर अन्त तक की क्रिया को कहता है। मूर्त (सिद्ध) एवं द्रव्य के समान बने भाव (सिद्ध भाव) को (वक्त) 'व्रज्या' 'पंक्ति' जैसे 'नाम' शब्दों से कहता है।

**व्याख्या**—'नाम' तथा 'आख्यात' की परिभाषा देने के पश्चात् यह विचारणीय है कि वाक्य में जहाँ दोनों की 'आख्यात' तथा 'नाम' पदों का प्रयोग होता है वहाँ 'भाव' (क्रिया) की प्रधानता मानी जाय या सव्य अर्थात् द्रव्य की? इस प्रश्न का उत्तर यहाँ यह दिया गया है कि वाक्य में जब 'नाम' तथा 'आख्यात' दोनों का प्रयोग होगा तो भी क्रिया की ही प्रधानता होगी। पृथक्—पृथक् जब दोनों का प्रयोग होता है तभी 'आख्यात' को क्रियाप्रधान तथा 'नाम' को द्रव्य प्रधान मानना चाहिये। परन्तु वाक्य में तो जहाँ भी क्रिया की प्रधानता होगी— द्रव्य वहाँ गौणरूप धारण कर लेगा। क्योंकि क्रिया साध्य होती है— निष्पाद्य होती है। उस क्रिया की सिद्धि के लिए 'नामों' अथवा कारकों या दूसरे शब्दों में साधनों का प्रयोग किया जाता है। द्र०—'साधनं हि क्रियाँ निवर्तयति' (साधन क्रिया को बनाते हैं) महाभाष्य (6।1।135)।

'भाव' तथा 'सत्त्व' को और स्पष्ट करने के लिए यहाँ पूर्वापरिभूतम् इत्यादि दो वाक्य कहे गये हैं। पहले वाक्य में यह कहा गया है कि व्रजति पचति जैसे आख्यातों के प्रयोगों द्वारा साध्यभाव अथवा व्यापार को जब वक्ता कहता है तो जाने पकाने जैसी क्रियाओं का बोध इस रूप में होता है कि उन क्रियाओं में, पहले तथा बाद में और इस रूप में एक विशिष्ट क्रम में होने वाली अनेक अवान्तर क्रियाओं का ज्ञान होता है।

**मूर्तसत्त्वभूतं.....पंक्तिरिति—**

इस वाक्य में यह स्पष्ट किया गया कि 'नाम' शब्द भी कभी—कभी भाव को कहते हैं। परन्तु यह भाव 'पूर्वापरीभूत' अर्थात् साध्य न होकर सिद्ध होता है— अमूर्त न होकर मूर्त होता है, निष्पाद्य न होकर निष्पन्न होता है। यहाँ वह अपनी क्रमिकता को छोड़कर द्रव्य के समान हो जाता है। इस पंक्ति का अन्वयार्थ यह होगा कि मूर्त एवं सत्त्वभूत भाव को 'व्रज्या' 'पंक्ति' जैसे 'नाम' शब्द कहते हैं। यदि 'उपक्रम—प्रभृत्यपवर्गपर्यन्तम्' अंश इस वाक्य से भी सम्बन्ध कर दिया जाय तो इस वाक्य का अर्थ और स्पष्ट हो जाता है। अभिप्राय यह है कि 'व्रज्या' 'पंक्ति' जैसे भाववाचक नाम शब्दों का प्रयोग करने पर क्रिया के प्रारम्भ से लेकर अन्त तक की जो अवस्था है वह, अपनी क्रमिकता छोड़कर, मूर्त एवं सत्त्वभूत बनकर प्रकट होती है।

**टिप्पणी**—तद् यत्रोभे भावप्रधाने भवतः, इस अंश की प्र० गुणे तथा डॉ० लक्ष्मण स्वरूप ने एक और तरह से संगति लगायी है। उनका विचार है कि यहाँ 'यत्र' पद का अभिप्राय वाक्य न होकर 'व्रज्या' 'पंक्ति' इत्यादि भाववाचक 'नाम' शब्दों की ओर यास्क का संकेत है जो, 'व्रजति' 'पचति' आदि आख्यात शब्दों के समान, 'भाव' अथवा व्यापार को ही कहते हैं तथा इसी कारण 'भाव-प्रधान' हैं।

### नाम 'आख्यात' के सामान्य एवं विशेष रूप का प्रदर्शन—

**मूल**—'अदः' इति सत्त्वानाम् उपदेशः। 'गौर' 'अश्वः' 'पुरुषः हस्ती' इति। 'भवति इति भावस्य'। 'आस्ते' 'शेते', 'व्रजति', 'तिष्ठति' इति।

**अनुवाद**—'अदस्' (इस प्रकार के सर्वनाम शब्दों) के द्वारा 'नाम' (वस्तुओं या सिद्ध-भाव) का (सामान्य रूप से) कथन होता है तथा 'गौ' 'अश्व' 'पुरुष' 'हाथी', (इत्यादि शब्दों से) विशेष रूप से। (इसी प्रकार) 'भवति' (जैसे अस्तित्व के वाचक तिङन्त पदों) के द्वारा साध्यभाव (अथवा क्रिया) का सामान्य रूप से कथन होता है तथा 'आस्ते', 'शेते', 'व्रजति' 'तिष्ठति' (इत्यादि विशिष्ट क्रिया के वाचक तिङन्त पदों) के द्वारा विशेष रूप से।

**व्याख्या**—यास्क की वाक्य-रचना प्रायः अतीव संक्षिप्त एवं सूत्र शैली के समान है। इसीलिए 'सत्त्वानाम्' तथा उपदेश के बीच 'सामान्येन' का तथा 'गौर' अश्व पुरुषों हस्तीति के पश्चात् सत्त्वानां विशेषणोपदेशः का अध्याहार करना पड़ता है। इसी प्रकार 'भवतीति भावस्य' के पश्चात् 'सामान्येन उपदेशः' तथा 'तिष्ठतीति' के पश्चात् 'विशेषणोपदेशः' का अध्याहार करना आवश्यक है।

अभिप्राय यह है कि 'अदम्' या 'इदम्' जैसे सर्वनामों के द्वारा सामान्यतया सभी 'नाम' शब्दों का कथन होता है। वस्तुतः 'सर्वनाम' कहा ही उन शब्दों को जाता है जिनका प्रयोग किसी एक के लिए निश्चित न होकर सबके लिए समान रूप से किया जा सके। इसीलिए 'सर्वेषां नाम सर्वनाम' इस व्युत्पत्ति के अनुसार 'सर्वनाम' को अन्वर्थक संज्ञा माना गया। इसके विपरीत 'गौ' 'अश्व' इत्यादि शब्द किसी विशिष्ट 'नाम' या द्रव्य के वाचक हैं। इसी कारण इस प्रकार के शब्दों को 'सर्वनाम' नहीं कहा जाता।

### औदुम्बरायण का शब्द-नित्यत्व पक्ष और उसके दोष —

**मूल**—इन्द्रिय नित्यं वचनम् औदुम्बरायणः। तत्र चतुष्टयं नोपपद्यते। अयुगपद् उत्पन्नानां वा शब्दानाम् इतरेतरोपदेशः, शास्त्र कृतो योगश्च।

**अनुवाद**—शब्द (जिह्वा) इन्द्रिय में (ही) नित्य है, ऐसा औदुम्बरायण (आचार्य) का मत है। इस मत में (पदों के) चार विभाग नहीं बन पाते। भिन्न-भिन्न समय में उत्पन्न हुए शब्दों का एक दूसरे के प्रति (गौण-प्रधान-भाव से) सम्बन्ध तथा (व्याकरण) शास्त्र में प्रदर्शित (प्रकृति-प्रत्यय आदि का) संयोग भी सुसंगत नहीं हो पाता।

**व्याख्या**—औदुम्बरायण एक प्राचीन आचार्य हो चुके हैं। यास्क ने इन्हें जिस रूप में यहाँ उद्धृत किया है उससे यह प्रतीत होता है कि वे शब्द को अनित्य मानते थे— केवल वाग् इन्द्रिय में ही उसकी सत्ता मानते थे। अर्थात् जब तक जिह्वा वाणी या शब्द का उच्चारण करती है तभी तक शब्द की सत्ता है तथा उच्चरित होते ही वह नष्ट हो जाता है। सम्भवतः इस मत में शब्द तथा उसकी ध्वनि में कोई अन्तर न मानते हुए ध्वनि को ही शब्द माना जाता रहा।

### यास्क का शब्द नित्यत्व पक्ष—

**मूल**—व्याप्तिमत्त्वात् तु शब्दस्य।

**अनुवाद**—परन्तु शब्द के व्याप्तिमान् (नित्य) होने के कारण उपर्युक्त तीनों दोषों का समाधान हो जाता है।

**व्याख्या**—शब्द तथा ध्वनि ये दोनों पृथक—पृथक तत्त्व हैं। शब्द नित्य हैं। अर्थात् सदा ही वक्ता और श्रोता की बुद्धि अथवा हृदय में विद्यमान रहते हैं। ध्वनियों के द्वारा केवल उनकी अभिव्यक्ति होती है, उत्पत्ति नहीं। शब्द की, ध्वनियों के द्वारा होने वाली, यह अभिव्यक्ति ही अनित्य है क्योंकि ध्वनियाँ वाग् इन्द्रिय आदि के द्वारा उच्चरित होती हैं तथा तुरन्त नष्ट हो जाती हैं। परन्तु शब्द अभिव्यक्त या अनभिव्यक्त चाहे जिस रूप में रहे—दोनों स्थितियों में यह नित्य है। पतंजलि ने महाभाष्य (1।1।70) में 'स्फोटस् तात्वान् एव ध्वनिकृता वृद्धिः' कहकर शब्द के इसी नित्य रूप को स्पष्ट किया है। शब्द के इस नित्य स्वरूप की दृष्टि से ही शब्द का दूसरा नाम 'स्फोट' या 'शब्द ब्रह्म' पड़ा। कात्यायन, पतंजलि तथा भर्तृहरि आदि ने न केवल शब्द को ही अपितु शब्द, अर्थ और उनके सम्बन्ध तीनों को नित्य माना है। इस रूप में शब्दों के नित्य होने के कारण शब्दों के उपयुक्त चार प्रकार का विभाजन, वाक्य में शब्द प्रयोग की आवश्यकता लौकिक, तथा वैदिक भाषाओं की समानता, विद्यमान शब्दों का पारस्परिक गौण—प्रधान—भाव तथा प्रकृति—प्रत्यय या धातु उपसर्ग आदि का योग अर्थात् सम्बन्ध, सब कुछ उत्पन्न हो जायेगा।

### शब्द प्रयोग की आवश्यकता—

**मूल**—अणीयस्त्वाच्च शब्देन संज्ञकरणं व्यवहारार्थं लोके।

**अनुवाद**—अत्यन्त सरल (एवं स्पष्ट) होने के कारण लोक में (पारस्परिक) व्यवहार के लिए शब्द से (ही वस्तु या व्यक्ति का) नाम रखा जाता है।

**व्याख्या**—यहाँ यह पूछा जा सकता है कि विचारों के आदान—प्रदान के लिए शब्दों का या शब्दों के समूह भाषा का माध्यम क्यों अपनाया जाये? विभिन्न शारीरिक चेष्टाओं, जैसे—हाथ या आँख के इशारे, तथा अन्य संकेतों से भी तो काम चलाया जा सकता है? इस प्रश्न के उत्तर में यास्क ने संक्षेप में यह कहा है कि भावों या विचारों को अधिक से अधिक सरल तथा सुस्पष्ट रूप में शब्दों के माध्यम से ही प्रकट किया जा सकता है। संकेत या शारीरिक चेष्टाओं द्वारा बहुत थोड़ी बातें प्रकट की जा सकती हैं तथा साथ ही उनमें

बहुत कुछ अस्पष्टता एवं सन्दिग्धता बनी ही रहेगी। इसके अतिरिक्त इशारों और संकेतों से बातें बताने में देर ही लग सकती है। इसीलिए वस्तुओं तथा व्यक्तियों के नाम शब्दों के द्वारा रखे गये तथा शब्दों का ही विभिन्न अर्थों में संकेत किया गया जिन्हें उन शब्दों का अर्थ कहा जाता है।

### लौकिक तथा वैदिक भाषाओं की समानता—

**मूल**—तेषां मनुष्यवद् देवताभिधानम्।

**अनुवाद**—वे (शब्द) जिस प्रकार (लौकिक भाषा में) मनुष्यों के प्रति विभिन्न अर्थों को प्रकट करते हैं, उसी प्रकार वैदिक भाषा में वे देवताओं के प्रति (विभिन्न अभिप्रायों को भी) प्रकट करते हैं।

**व्याख्या**—जहाँ तक अर्थ-प्रकाशन की क्षमता का सम्बन्ध है, लौकिक भाषा तथा वैदिक भाषा दोनों ही समान हैं। यहाँ 'मनुष्यवत्' शब्द में 'तत्र तस्येव' सूत्र से सप्तमी विभक्ति के अर्थ में 'वत्' प्रत्यय मानना चाहिये तथा 'मनुष्येषु इव' अर्थ करना चाहिये। अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार लौकिक भाषा में 'गौ' आदि शब्दों का प्रयोग करने पर 'गाय' 'वाणी' आदि अर्थों की प्रतीति होती है, उसी प्रकार वैदिक भाषा में भी इन 'गौ' आदि शब्दों का प्रयोग करने पर 'गाय', 'पृथ्वी', 'अकिरण', 'वाणी' इत्यादि का ज्ञान होता है। जिस प्रकार 'देवदत्त'! 'आयाहि दुग्धं पिव' यह वाक्य देवदत्त को यह बताता है कि 'देवदत्त तुम आओ और दूध पीओ।' उसी प्रकार 'वायवायाहि दर्शते सोमा अलंकृताः' इत्यादि वैदिक मन्त्रों के शब्द भी वायु इत्यादि देवों के प्रति यह कहते हैं कि 'वायु देव तुम आओ देखो यह सोम रस से भरे पात्र सजे हुए हैं।' अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार लौकिक-भाषा के शब्द अर्थ के वाचक हैं, उसी प्रकार वेद के शब्द भी अर्थवान् हैं।

### वैदिक मन्त्रों की आवश्यकता—

**मूल**—पुरुषविद्यानित्यत्वात् कर्मसम्पत्तिर मन्त्रो वेदे।

**अनुवाद**—पुरुष के ज्ञान के अनित्य होने के कारण वेद में कर्मों के सम्पूरक मन्त्र (संगृहीत) हैं।

**व्याख्या**—यह पूछा जा सकता है कि यदि वैदिक भाषा और लौकिक भाषा दोनों समान रूप से सार्थक हैं तो फिर यज्ञ आदि कार्यों में वैदिक मन्त्रों के प्रयोग की अनिवार्यता क्यों मानी जाती है। अपनी इच्छानुसार जिस किसी भी भाषा में रचित पद्यों या वाक्यों द्वारा यज्ञ आदि कार्य क्यों न किये जायें इस प्रश्न का उत्तर यास्क यह देते हैं कि दोनों भाषाओं के समान होने पर भी वेद-मन्त्र अपौरुषेय हैं और लौकिक भाषा में निबद्ध वाक्य या पद्य पौरुषेय हैं, मानव निर्मित हैं। भारतीय परम्परा इस बात को मानती आयी है कि वेद मानवीय ज्ञान न होकर स्वतंत्र रूप से समुद्भूत शाश्वत ज्ञान है, जिसका ऋषियों द्वारा साक्षात्कार किया गया। दूसरी ओर मानव का ज्ञान अनित्य है, अपूर्ण है तथा उसकी शक्ति एवं बुद्धि सीमित है। इसलिये उसकी भाषा में भी यह अपूर्णता अवश्य होगी। अतः मानवीय भाषा का प्रयोग होने पर यज्ञ आदि कार्यों की फलोत्पादकता या दूसरे शब्दों में इनकी सफलता के विषय में सन्देह हो सकता है। परन्तु वेद-मन्त्र के द्वारा किये जाने

पर यज्ञ आदि कार्य निश्चित रूप से फल के उत्पादक होंगे। वे यज्ञ आदि कार्य पूर्ण ही तब माने जायेंगे जब उनमें वैदिक मन्त्रों का प्रयोग एवं विनियोग किया जायेगा। ब्राह्मण-ग्रन्थों ने इसी बात को निम्न शब्दों में स्वीकार किया है— 'एतद् वै यज्ञस्य समृद्धं यद् रूपसमृद्धं यत् कर्म क्रियमाणम् ऋग् यजुर् वाभिवदति'। (गौपथ ब्राह्मण 2।2।6) अर्थात् यज्ञ आदि की पूर्णता तो यही है कि वे रूप से समृद्ध हों— उनमें जो कार्य किया जा रहा है उसे ऋक् तथा यजुष् के मन्त्र भी कह रहें हों।

### भाव के छः प्रकार तथा उनके अभिप्राय—

**मूल**—षड् भाव—विकार—भवन्तीति वार्ष्ण्ययणिः। जायते, अस्ति, विपरिणमते, वर्धते, अपक्षीयते विनश्यति इति।

**अनुवाद**—छः प्रकार के भाव विकार होते हैं— उत्पन्न होना, परिवर्तित होना, बढ़ना—घटना तथा नष्ट होना यह वार्ष्ण्ययणि का मत है 'जायते' यह (शब्द) पूर्वभाग (उत्पत्ति) के प्रारम्भ को कहता है, अपरभाव होना को न तो कहता है न (उसका प्रतिषेध करता है)। 'अस्ति' (होना) (रूप भाव) उत्पन्न पदार्थ की स्थिति को (कहता) है। 'विपरिणमते' यह (परिणत होना रूप भाव) अपने स्वरूप से अपरिवर्तित वस्तु के विकार को (कहता है) 'वर्धते' यह (बढ़ना रूप भाव) अपने अंगों अथवा स्व-सम्बद्ध पदार्थों की वृद्धि (या पुष्टि) को (कहता है) (जैसे) विजयेन वर्धते अथवा शरीरेण वर्धते। 'अपक्षीयते' यह (घटना) रूप भाव इसी (वर्धते की व्याख्या) से विपरीत रूप में व्याख्यात हो गया। 'विनश्यति' यह (नष्ट होना रूप भाव) अन्तिम भाव (नाश) के प्रारम्भ को कहता है। (इससे) पहले के भाव (घटना) को न कहता है और न (उसका) निषेध करता है। इन (छः भाव विकारों से) अन्य भाव विकार इनके ही विकार (अवान्तर) भेद हैं ऐसा (वार्ष्ण्ययणि ने) कहा है। उन (भाव विकारों) का वचन (प्रसंग या मंत्र) के अनुसार निश्चय कर लेना चाहिये।

**व्याख्या**— पहले 'आख्यात' की परिभाषा में 'भावप्रधानम्' शब्द आया था। वहाँ 'भाव' का अर्थ 'साध्य-भाव' अथवा व्यापार या क्रिया है। उसी 'भाव' की दृष्टि से यहाँ भाव-भेदों की चर्चा की जा रही है। यद्यपि 'भाव' अथवा सामान्य क्रिया के अनन्त भेद हो सकते हैं। परन्तु प्रमुख रूप से, एक प्राचीन आचार्य, वार्ष्ण्ययणि ने 'भाव' के छः भेद माने हैं। बृहद्देवता (2।1।21), महाभाष्य (1।3।1) तथा वाक्यपदीय (1।3) में भी छः भाव-भेदों की चर्चा मिलती है। पहले दो ग्रन्थों में तो वार्ष्ण्ययणि का नाम लिया गया है, पर तीसरे में बिना नाम के ही इन छः विकारों का उल्लेख है।

**आचार्य वार्ष्ण्ययणि** का विचार यह है कि उत्पन्न होने वाले सभी पदार्थों में ये छः विकार देखे जाते हैं। इन विकारों का स्वभाव यह है कि वे अपने से पहले आने वाले विकार के समय में ही सूक्ष्म रूप से अपना स्वरूप धारण करने लगते हैं और अपने से पहले वाले विकार के तिरोहित हो जाने पर अपने स्वरूप को पूर्णतः स्पष्ट करते हैं।

यहाँ प्रथम भाव विकार है 'जायते' अर्थात् उत्पन्न होना। बीज से जब अंकुर निकलता है तब यह कहा जाता है कि अंकुर पैदा हुआ। यद्यपि पैदा होना के साथ-साथ होना रूप क्रिया या भाव विकार भी है

ही। परन्तु यहाँ 'जायते' शब्द 'उत्पन्न होने' रूप भाव विकार को ही कहता है, 'होने' रूप भाव विकार को नहीं कहता और न उस 'भाव' का प्रतिषेध ही करता है। कहता इसलिए नहीं कि 'जायते' का अर्थ केवल 'होना न होकर' 'उत्पन्न होना' अर्थ है और निषेध इसलिए नहीं करता है कि 'उत्पन्न होना' रूप भाव-विकार हो ही तब कह सकता है जब कोई पदार्थ हो, अर्थात् वहाँ 'होना' रूप भाव-विकार भी हो। यदि अंकुर उत्पन्न होता है, यह कहा भी नहीं जा सकता।

दूसरा भाव-विकार है 'अस्ति' जिसका अर्थ है 'होना', अपनी सत्ता धारण करना। वैयाकरणों ने भी 'अस्ति' का अर्थ किया है 'आत्म-धारणानुकूलों व्यापारः'। 'अस्ति', 'भवति', 'विद्यते' 'वर्तते' ये सभी धातुयें सामान्य सत्ता अथवा 'भाव' को ही कहती हैं, जिसका अर्थ होता है— 'अपने को धारण करना'। इसलिए यास्क ने 'भवति इति भावस्य' कह कर 'सत्ता' को भाव सामान्य के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया है। कैयट ने इसी दृष्टि से 'आत्म-भरण-वचनों भवतिः' (महाभाष्य 1।3।1 पृ0 165) कहा भर्तृहरि से 'अस्ति' के अर्थ के विषय में चर्चा करते हुए यह कहा कि 'अपने को अपने द्वारा धारण करने की स्थिति को अस्ति' पद के द्वारा कहा जाता है— 'आत्मानम् आत्मना विभ्रद् अस्तीति व्यपदिश्यते' वाक्यपदीय (3, सं0, 7)।

तीसरा भाव-विकार है— 'विपरणमते' जिसका अभिप्राय है 'परिवर्तन'। यहाँ 'परिवर्तन' का अभिप्राय वह सामान्य विकार है जिसमें वस्तु अपने मौलिक धर्म, तत्व, या स्वभाव से रहित नहीं होता। जैसे मानव-शरीर में विविध परिवर्तन हो सकते हैं, परन्तु शरीर के स्वभाव में कोई भी परिवर्तन नहीं होता।

चौथा विकार है 'वर्धते' अर्थात् 'वृद्धि'। यह 'वृद्धि' दो प्रकार की हो सकती है। पहली अपने शरीर की वृद्धि तथा दूसरी अपने से सम्बद्ध या संयुक्त पदार्थों की वृद्धि अथवा पुष्टि। यहाँ निरुक्त में 'स्वाङ्ग' शब्द का प्रयोग शरीर के अर्थ में किया गया है— शरीर के अंग के अर्थ में नहीं। पहले प्रकार की 'वृद्धि' की दृष्टि से 'वर्धते शरीरेण' यह उदाहरण दिया गया तथा दूसरे प्रकार की दृष्टि से 'वर्धते' विजयेन उदाहरण दिया गया। इस प्रकार के और उदाहरण 'वर्धते धनेन', 'वर्धते यशसा' इत्यादि हो सकते हैं। निरुक्त में 'वर्धते शरीरेण' यह उदाहरण 'वर्धते विजयेन' के पहले आना चाहिये।

पाँचवा भाव-विकार है 'अपक्षीयते' अर्थात् 'ह्रास' अथवा 'अपक्षय'। 'अपक्षय' से 'विनाश' को छटे भाव-विकार के रूप में गिनाया गया है। यह 'ह्रास' भी 'वृद्धि' के समान दो प्रकार का हो सकता है— पहला शरीर का ह्रास तथा दूसरा अपने से युक्त या सम्बद्ध पदार्थों का ह्रास। पहले का उदाहरण है— 'अपक्षीयते शरीरेण' तथा दूसरे का उदाहरण है— 'अपक्षीयते अपजयेन' इत्यादि। इसीलिए यास्क ने यहाँ केवल "अपक्षीयते इत्येतेनैव व्याख्यातः प्रतिलोमम्" इतना कहना ही पर्याप्त समझा।

छठा भाव-विकार है 'विनश्यति' अर्थात् 'विनाश' यह इन छः भाव-विकारों में अन्तिम विकार है। जब 'ह्रास' अपनी अन्तिम सीमा पर आ जाता है तब 'विनाश' का प्रारम्भ माना जाता है। इसी कारण यह 'विनश्यति' पद अन्तिम भाव 'विनाश' की प्रारम्भिक अवस्था को कहता है। परन्तु उससे पूर्व के भाव-विकार



‘अपक्षय’ को न तो कहता ही है और न उनका निषेध ही करता है। कहता इसलिए नहीं कि ‘विनश्यति’ का अर्थ ‘अपक्षय’ अथवा ‘ह्रास’ न होकर ‘पूर्ण विनाश’ हुआ करता है और निषेध इसलिए नहीं कर सकता कि ‘अपक्षय’ के हुए बिना ‘विनाश’ हो ही नहीं सकता।

यास्क के अनुसार, वार्षायणि का यह भी कहना है कि इन छः विकारों के अतिरिक्त अन्य जितने भी भाव-विकार उपलब्ध होते हैं, उन सबको इन छः विकारों के अन्तर्गत ही मान लेना चाहिये।

### उपसर्ग अर्थों के वाचक या द्योतक —

**मूल**—‘न निर्बद्धा उपसर्गा अर्थात् निराहुः’ इति शाकटायनः। नामाख्यातयोस्तु कर्मोपसंगद्योतका भवन्ति। ‘उच्चावचाः पदार्था भवन्ति’ इति गार्ग्यः। तद् य एषु पदार्थः प्राहुर् इमे में नामाख्यातयोर् अर्थविकरणम्।

**अनुवाद**—स्वतन्त्र (रूप से प्रयुक्त) उपसर्ग निश्चय ही अर्थों को नहीं कहते अपितु ‘नाम’ तथा ‘तिङन्त’ पद के अर्थ-सम्बद्ध के द्योतक मात्र होते हैं— यह शाकटायन का मत है। परन्तु (इसके विपरीत) गार्ग्य का मत यह है कि (उपसर्ग) विभिन्न अर्थों वाले होते हैं। तो इन (उपसर्गों) में जो पदार्थ (उपसर्ग पदों का अर्थ) है, जिसके द्वारा ‘नाम’ तथा ‘आख्यात’ के अर्थ में विकार (परिवर्तन) उत्पन्न हो जाता है, उसको ये (उपसर्ग) अच्छी तरह से कहते हैं।

**व्याख्या**— संस्कृत-व्याकरण में उपसर्गों के द्योतकत्व तथा वाचकत्व पक्ष को लेकर बहुत प्राचीन काल से आचार्यों में विवाद चलता आ रहा है। इसी विवाद का उल्लेख यहाँ किया गया है। संस्कृत-व्याकरण के प्राचीन आचार्य, शाकटायन प्रथम पक्ष के प्रबल पोषक हैं तथा सम्भवतः निरुक्त के प्राचीन आचार्य, गार्ग्य दूसरे पक्ष के।

शाकटायन का यह विचार है कि उपसर्ग सदा ही ‘नाम’ (प्रातिपदिक) अथवा ‘आख्यात’ (तिङन्त) पदों के साथ सम्बद्ध होकर ही आते हैं। कभी भी वे स्वतंत्र रूप में प्रयुक्त होकर किसी विशिष्ट अर्थ का प्रकाशन नहीं करते। अतः यही मानना चाहिये कि उपसर्ग जिन ‘नाम’ या ‘तिङन्त’ पदों के साथ प्रयुक्त होते हैं उनके ही अर्थों को द्योतित करते हैं— स्वयं किसी ऐसे अर्थ का कथन नहीं करते जो उन ‘नाम’ या ‘तिङन्त’ पदों के अर्थ से भिन्न अर्थ हों, जिनके साथ ये प्रयुक्त होते हैं। अभिप्राय यह है कि उपसर्ग के प्रयुक्त होने से जिस अर्थ का प्रकाशन होता है वह उपसर्ग का न होकर उन्हीं ‘नाम’ या ‘तिङन्त’ पदों का होता है— उपसर्ग तो केवल उन अर्थों का प्रकाशन या द्योतन मात्र करते हैं। जैसे— घर में सारा सामान विद्यमान होने पर भी अन्धकार के कारण दिखाई नहीं देता पर जब दीपक जल जाता है तो वह सब दिखाई देता है। यहाँ जिस प्रकार दीपक उन सामान या वस्तुओं का द्योतक मात्र होता है— लाने वाला नहीं होता— उसी प्रकार उपसर्ग भी केवल इन अर्थों के द्योतक मात्र होते हैं— वाचक नहीं।

**निर्बद्धा उपसर्गा अर्थात् न निराहुः**—शाकटायन के इस मत में इस बात पर जोर दिया गया है कि उपसर्ग स्वतंत्र रूप से अर्थ का कथन निश्चित ही नहीं करते। ‘निराहुः’ प्रयोग में ‘निर्’ उपसर्ग निश्चय अर्थ

का द्योतन करता है। ये उपसर्ग तो केवल उन अर्थों का द्योतन मात्र करते हैं, जो 'नाम' या 'आख्यात' पदों में सन्निहित (उपसंयुक्त) रहते हैं। कर्मोपसंयोग—द्योतकाः का विग्रह है— कर्मणः (अर्थस्य) उपसंयोगः (सम्बन्धः) कर्मोपसंयोगः। तस्य द्योतका कर्मोपसंयोग—द्योतकाः। 'नाम' और 'आख्यात' का अर्थ विशेष के साथ जो सम्बन्ध है— उसके उपसर्ग द्योतक होते हैं वाचक नहीं।

**टिप्पणी**—वैयाकरणोंके सिद्धान्त में उपसर्ग अर्थ के द्योतक होते हैं, का आधार एक और मूलभूत सिद्धान्त यह है कि धातु अनेक अर्थ वाली होती है। द्र०—अनेकार्था हि धातवो भवन्ति। तद् यथा वपिः प्रकिरणे दृष्टश् छेदने चापि वर्तते—'केशश्मश्रु वपति' इति। ईडिः स्तुति स्तुति चोदना—याच्नासु दृष्टः प्रेरणे चापि वर्तते—'अग्निर्वा इतो वृष्टिम् ईट्टे मरुतोऽमुतश्च्यावयन्ति'—इति। कारोतिर् अभूत—प्रादुर्भावे दृष्टो निर्मलीकरण चापि वर्तते—'कटे कुरु' 'पादौ कुरु' उन्मृदान इति गम्यते। निक्षेपणे चाऽपि वर्तते—'कटे कुरु' 'घटे कुरु' 'अस्मानम् इतः कुरु' स्थापय इति गम्यते। एवम् इहापि तिष्ठतिरेव ब्रजिक्रियामाह तिष्ठतिर् एव ब्रजिक्रिया या निवृत्तिम्। महाभाष्य (1।3।1) यहाँ पतंजलि के इस कथन का संक्षिप्त अभिप्राय यह है कि धातु—पाठ में धातुओं के जिन—जिन अर्थों को प्रदर्शित किया गया है उनसे भिन्न अर्थों में भी धातुओं का प्रयोग होता है इसलिए यही मानना चाहिये कि 'स्था' धातु ही 'तिष्ठति' प्रयोग में 'ठहरने' अर्थ को तथा 'प्रतिष्ठते' प्रयोग में वही प्रस्थान करने या 'जाने' अर्थ को कहती है। 'प्रतिष्ठते' में विद्यमान 'प्र' उपसर्ग तो केवल इस बात का द्योतक करता है कि 'स्था' धातु का अर्थ यहाँ 'ठहरना' न होकर 'जाना' है।

**आचार्य गार्ग्य का वाचकत्व पक्ष**—नैरुक्त आचार्य गार्ग्य का यह निश्चित मत है कि उपसर्ग भी 'नाम' और 'आख्यात' के समान 'पद' है तथा उनके भी अपने—अपने विविध अर्थ होते हैं, द्योतक नहीं। यह दूसरी बात है कि ये उपसर्ग स्वभावतः ऐसे अर्थ के वाचक होते हैं जो 'नाम' या 'आख्यात' पदों के ही अर्थों में विकार पैदा कर देते हैं जो 'नाम' तथा 'आख्यात' पदों में उपसर्ग के संयोग से जो अर्थ की भिन्नता आती है और उपसर्ग के हट जाने पर जो अर्थ की भिन्नता समाप्त हो जाती है, उसे अन्यव्यतिरेक के नियम के अनुसार उपसर्गों का ही अर्थ मानना चाहिये। यह अर्थ भिन्नता ही इन उपसर्ग पदों का अपना अर्थ है तथा उसे ये उपसर्ग 'प्राहुः'— अच्छी प्रकार कहते हैं केवल द्योतन मात्र नहीं करते।

ते उपेक्षितव्याः का अर्थ— इन उपसर्गों के विविध अर्थों के विषय में अच्छी प्रकार विचार करना चाहिये—उनकी परीक्षा करनी चाहिये। इस प्रयोग से यह स्पष्ट है कि यास्क के समय शब्द 'उप' उपसर्ग पूर्वक 'ईक्ष्' धातु उपेक्षा के आधुनिक अर्थ में प्रसिद्ध नहीं हो सका था।

**टिप्पणी**—उपसर्गों के विषय में नैरुक्तों का मत वैयाकरणों से भिन्न रहा है। नैरुक्त उपसर्गों को अर्थों का द्योतक न मानकर वाचक मानते रहे हैं। यह गार्ग्य के कथन से अनुमय है। शाकटायन का यह कहना है कि उपसर्ग स्वतंत्र रूप से अर्थों का कथन नहीं करते बहुत सत्य नहीं है, क्योंकि वेदों में अनेक स्थानों पर केवल उपसर्ग अपने अर्थ से विशिष्ट किसी क्रिया को कहते हुए देखे जाते हैं, जैसे—

उद् उत्तमं वरुण पाशम् अस्मद् अवाधमं वि मध्यमं अथाय ।

अथा वयम् आदित्य व्रते तवानागसोऽदियते स्याम ।। (ऋग्वेद 1।24।15)

इस मंत्र के पूर्वार्ध में पहले स्वतंत्र रूप से प्रयुक्त 'उत्' तथा 'अव' उपसर्ग 'ऊपर की ओर खोलो' तथा 'नीचे की ओर खोलो' इन अर्थों को कहते हैं यह कहना उचित नहीं है कि यहाँ ये उपसर्ग भी स्वतंत्र रूप से प्रयुक्त न होकर 'श्रथाय' क्रिया से सम्बद्ध हैं क्योंकि 'श्रथाय' का तो अध्याहार करना पड़ता है। मन्त्रकर्ता ऋषि ने स्वयं उसका प्रयोग नहीं किया है।

उपसर्गों के इन स्वतन्त्र प्रयोगों तथा उनसे प्रकट होने वाले विशिष्ट अर्थों को देखकर ही पतंजलि को भी, जो उपसर्गों के द्योतकत्व पक्ष के समर्थक हैं, यह कहना पड़ा कि उपसर्गों का यह स्वभाव है कि जब उनके साथ किसी क्रियावाचक शब्द का प्रयोग होता है तो वहाँ वे क्रिया विशेष को कहते हैं। परन्तु जहाँ उनके साथ तिङन्त पद का प्रयोग नहीं होता वहाँ साधन (कारक) से विशिष्ट क्रिया को कहते हैं— उपसर्गाश्च पुनर् एवम् आत्मका यत्र क्रियावाची शब्दः प्रयुज्यते तत्र क्रिया विशेषम् आहुः। यत्र तु न प्रयुज्यते तत्र ससाधनां क्रियाम् आहुः।

वैदिक प्रतिसाख्यकार भी संभवतः नैरुक्तों के इस वाचकता पक्ष से ही सहमत हैं, क्योंकि उपसर्गों के विषय में ऋक्-प्रतिशाख्य में 'उपसर्गा विशतिर् अर्थवाचकाः (2।20) तथा 'उपसर्गो विशेषकृत' (12।25) कहकर उन्हें विशिष्ट अर्थ का वाचक माना गया है।

वस्तुतः वैदिक-मन्त्रों में उपसर्गों के स्वतंत्र प्रयोगों को देखते हुए वैदिक भाषा की दृष्टि से उपसर्गों को अर्थ का वाचक मानना उचित भी प्रतीत होता है।

### 3.4 सारांश

इस इकाई में यास्क कृत 'निघण्टु' शब्द के विविध निर्वचन प्रस्तुत किये गये एवं विभिन्न महत्वपूर्ण शब्दों की व्याख्या एवं निर्वचन प्रस्तुत किया गया है।

### 3.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. वैदिक साहित्य एवं संस्कृति— आचार्य बलदेव उपाध्याय।
2. निरुक्त— यास्क।
3. संस्कृत साहित्य का इतिहास— डॉ० शिवमूर्ति शर्मा।

### 3.6 स्वपरख प्रश्न / अभ्यास

1. निघण्टु शब्द की व्युत्पत्ति को समाइये?
2. नाम और आख्यात को परिभाषित कीजिये?
3. 'मूर्त्तसत्त्व' भूत को स्पष्ट कीजिये?
4. औदुम्बरायण का शब्द नित्यत्व पक्ष और उसके दोष बताइये?

5. शब्द प्रयोग की आवश्यकता पर प्रकाश डालिये?
6. उपसर्ग अर्थों के वाचक या द्योतक स्पष्ट कीजिये?

## खण्ड—दो

### इकाई—4

ईशावास्योपनिषद् सम्पूर्ण (व्याख्या एवं प्रश्न) तथा प्रमुख उपनिषदों का परिचय ।

### इकाई—5

वैदिक संहिताओं, प्रमुख ब्राह्मण ग्रन्थों, षड्वेदांगों, तथा सूत्र साहित्य का परिचय एवं वेदों का रचनाकाल और आरण्यक साहित्य ।

### परिचय

खण्ड—दो में ईशावास्योपनिषद् के मंत्रों का सन्दर्भ, अन्वय, व्याख्या, टिप्पणी को प्रस्तुत किया गया, एवं उपनिषदों का तथा वैदिक संहिताओं ( ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद ) का परिचय, प्रमुख ब्राह्मण ग्रन्थों, षड्वेदांगों, सूत्र साहित्य, वेदों का रचनाकाल और आरण्यक साहित्य का परिचय प्रस्तुत किया गया है ।

## इकाई-4

### ईशावास्योपनिषद् सम्पूर्ण तथा प्रमुख उपनिषदों का परिचय ।

#### इकाई की रूपरेखा

- 4.1 उद्देश्य
- 4.2 प्रस्तावना
- 4.3 ईशावास्योपनिषद् (व्याख्या एवं प्रश्न)
- 4.4 प्रमुख उपनिषदों का परिचय
- 4.5 सारांश
- 4.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें
- 4.7 स्वपरख प्रश्न / अभ्यास

#### 4.1 उद्देश्य—

इकाई एक के अध्ययन से आप जान सकेंगे कि ईशावास्योपनिषद् का प्रमुख प्रतिपाद्य विषय क्या है? किन विशेषताओं के कारण ईशावास्योपनिषद् प्रमुख उपनिषद् माना जाता है? प्रमुख उपनिषदों में कुछ अन्य उपनिषद् भी हैं, जिसका परिचय इस इकाई में प्रस्तुत किया गया है।

#### 4.2 प्रस्तावना—

इकाई में ईशावास्योपनिषद् के प्रमुख प्रतिपाद्य विषय ईश्वर, आत्मतत्त्व, जीव, ब्रह्म, विद्या, अविद्या आदि के विषय में प्रतिपादित मंत्रों की व्याख्या, सन्दर्भ, अन्वय, टिप्पणी आदि प्रस्तुत की गयी है एवं ईश, केन, कठ, प्रश्नोपनिषद्, मुण्डक-उपनिषद्, माण्डूक्य-उपनिषद्, ऐतरेय-उपनिषद्, छान्दोग्य उपनिषद्, बृहदारण्यक-उपनिषद्, श्वेताश्वर-उपनिषद् का परिचय प्रस्तुत किया गया है।

#### 4.3 ईशावास्योपनिषद् – (व्याख्या एवं प्रश्न)

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत् ।

तेन त्यक्तेन भुंजीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम् ॥1॥

**अन्वय—**जगत्यां यत् किंच जगत्, इदं सर्वम् ईशा वास्यम् । तेन त्यक्तेन भुंजीथाः । कस्यस्वित् धनं मा गृधः (अथवा, मा गृधः, कस्य स्वित् धनम्?) ।

**अर्थ—**विश्व में जो कुछ भी चर (तथा अचर) वस्तु है, वह सब ईश्वर से आच्छादित है। अतः उसका त्यागपूर्वक उपभोग करो, किसी (दूसरे) के धन का लोभ न करो (अथवा, उस ईश्वर के द्वारा दिये हुए पदार्थों से भोग सम्पन्न करो, लोभ मत करो, धन किसका है? किसी का नहीं) ।

**टिप्पणी**—ईशा—ईश् (ऐश्वर्ये) + क्विप् ऋ ईश्। तृतीयैकवचने ईशा, ईश्वरेण इत्यर्थः। वास्यम्—वस् (आच्छादने निवासेवा) + ण्यत्। जगत्—जंगमं चरं वा। स्थावरस्याचरस्य वाप्युपलक्षणम् एतत् पदम्। त्यक्तेन—त्यज् (परित्यागे) + क्तः कर्मणि, तृ०ए०। प्रदत्तेन इत्यर्थः। भावेक्त प्रत्यये सति, त्यक्तं त्यागः, तेन, त्यागपूर्वकमित्यर्थः। भुंजीथाः— भुज् (उपभोगे आत्मने०) + विधिलिङ् म०पु०ए०। गृधः—गृध+ लुङ् म०पु०ए० ('माङि लुङ्' इति नियमेन)। 'न माङयोगे' इति सूत्रेण 'अगृधः' इति क्रियापदस्य अडागमनिषेधः। स्वित्— 'स्वित् वितर्क' इति नियमेन अस्य निपातस्य वितर्कः प्रश्नोवाऽर्थः।

**कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छत्समाः।**

**एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥२॥**

**सन्दर्भ**—पूर्व मन्त्र में श्रुति का यह उपदेश था कि आत्मतत्त्व से परिचित व्यक्ति को वित्त इत्यादि की एषणा का त्याग करके ज्ञाननिष्ठ—ज्ञानमार्गी होकर आत्मा की रक्षा करनी चाहिये। प्रस्तुत मन्त्र में श्रुति का यह उपदेश है कि आत्मतत्त्व से अपरिचित व्यक्ति के आत्मोपलब्धि—आत्मज्ञान— के अयोग्य होने के कारण, उसके पूर्व चित्तशुद्धयर्थ शास्त्र—विहित अग्निहोत्रादि कर्म निष्काम भाव से करे।

**अन्वय**—इह कर्माणि कुर्वन् एव शतं समाः जिजीविषेत्। एवं त्वयि नरे कर्म न लिप्यते, इतः अन्यथा न अस्ति।

**अर्थ**—इस लोक में (शास्त्र—विहित) कर्मों को (भगवत्प्रीत्यर्थ) करते हुए ही सौ वर्ष जीवित रहने की इच्छा करे। इस प्रकार तुझ मनुष्य में कर्म लिप्त नहीं होता है। इससे भिन्न अन्य कोई मार्ग नहीं है, (जिससे चलते हुए व्यक्ति में शुभाशुभ कर्म लिप्त न हो)।

**टिप्पणी**—कुर्वन्—कृ+शत् पु०प्र० एक०। शतं समाः—शतं वर्षाणि (सौ वर्षों तक)। 'कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे' इति सूत्रेण द्वितीया विभक्तिः। 'संवत्सरो वत्सरोऽब्दो हायनोऽस्त्री शरत् समाः' इत्यमरः। जिजीविषेत्—जीव्+सन्+विधिलिङ् प्र०पु० एक०। जीवितुमिच्छेदित्यर्थः। इतः—इदम्+तसिल्। अस्मात् कर्मण इत्यर्थः। अन्यथा—अन्यत्+ थाल्। अन्येन भिन्नेन प्रकारेण इत्यर्थः। लिप्यते—लिप्+लट्।

**असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः।**

**तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः ॥३॥**

**सन्दर्भ**— प्रस्तुत मन्त्र में अज्ञानी—अनात्मविद् की निन्दा की गयी है।

**अन्वय**—असुर्या नाम अन्धेन तमसा आवृताः ते लोकाः। प्रेत्य तान् (लोकान्) ते जनाः अभिगच्छन्ति ये के च आत्महनः।

**अर्थ**— प्राणादि की ही तृप्ति में निरत (संलग्न) अज्ञानियों के जो प्रसिद्ध, ज्ञान—प्रकाश से रहित, अज्ञानान्धकार से आच्छादित (व्याप्त) लोक हैं। जो आत्मघाती जन, मर कर उन लोकों को वे जाते हैं।

**टिप्पणी**—असुर्य—असुषु प्राणेषु रमन्ते इति असुराः असु+रम्+ङः कर्तरि (अन्येष्वपि दृश्यते इति सूत्रेण)। असुर+यत् असुर्य। असुर्या लोकाः अर्थात् आसुरी योनियाँ—कूकुर—सूकर तथा कीटपतंगादि, सभी। लोकयन्ते

दृश्यन्ते साक्षात्क्रियन्ते भुज्यन्ते कर्मफलानि अत्रेति लोकाः (शूकरादीनां) योनयः, शरीराणि, (नरकादि) स्थानानि च। अन्धेन—अन्धयतीति अन्धम् अदर्शनात्मकमज्ञानम्, तेन आवृताः—आ+वृ+क्त कर्मणि, प्र०ब०व०। प्रेत्य—प्र+इण्+त्तवा—त्यप्, प्रकृष्टं दूरं लोकं गत्वा, मृत्वा इत्यर्थः। आत्महनः— आत्मन्+हन्+क्विप् कर्तरि। आत्मानं हनन्तीति आत्महनः उपपदसमारः। आत्महन्तारः, आत्मघातिन इत्यर्थः। यस्यात्मनो हननादविद्वांसः संसरन्ति, तद्विपर्ययेण विद्वांसो जना मुच्यन्तेऽनात्महनः, तत्कीदृशमात्मतत्त्वमिति उच्यते—

**अनेजदेकं मनसो जवीयो, नैनदेवा आप्नुवन्पूर्वमर्षत्।**

**तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति।।४।।**

**सन्दर्भ—**जिस आत्मा का हनन करने से, उसके विरुद्ध कार्य करने से, अनात्मज्ञ बार—बार जन्म—मरण के बन्धन में पड़ते हैं, वह तत्त्वतः कैसा है? इसका निरूपण प्रस्तुत चतुर्थ मन्त्र में किया जा रहा है।

**अन्यव—**तत् अनेजत् एकम् मनसः जवीयः, पूर्वम् अर्थात्। एनत् देवा न आप्नुवन। तिष्ठत् धावतः अन्यान् अत्येति। मातरिश्वा तस्मिन् अपः दधाति।

**अर्थ—**वह आत्मा (ब्रह्म) अचल अर्थात् स्वरूप से अच्युत (एकरस), (समस्त भूतों में) एक अर्थात् अद्वय, मन से भी अधिक वेगवान् या तीव्रगति, तथा सर्वत्र पहले से ही पहुँचा हुआ (सर्व—गत) है। (चक्षुरादि) इन्द्रियाँ (या इन्द्रादि देव) उस तक नहीं पहुँच सकीं। वह अचल या स्थित रहता हुआ भी, दौड़ते हुए अन्य सभी का उल्लंघन—अतिक्रमण—किये हुए है। उसमें अर्थात् उसके आश्रय से वायु जल को (समस्त प्राणियों की चेष्टा रूप क्रियायों को) धारण करता है।

**टिप्पणी—**अनेजत्—एजृ कम्पने+शतृ ऋ एजत् न एजत् इत्यनेजत्, नञ् तत्पु०। अचलमगतिकमेकरसमित्यर्थः। एकम्—अद्वयम्, 'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म' इति श्रुतेः। जवीय—जवो वेगः, जवोऽस्यास्तीति जववत्, अत्यन्तं जववत् इति जवीयः ऋ जववत्+ईयसुन् प्रत्ययः। ईयसुनि कृते मतुपो लोपः। एनत्—'इदम्' इत्यस्य शब्दस्य अन्वादेशः। आदेशानन्तरं पुनरादेशोऽन्वादेशः। एकवारम् 'इदम्' इति प्रयोगे जाते, पुनः प्रयोगापेक्षायाम् 'एनत्' इति प्रयुज्यते। तत् एनत् इति इदमोऽन्वादेशः। देवाः—द्योतनाद् देवाश्चक्षुरादयः (शा०भा०)। अर्थात्—ऋष् गतौ+शतृ (नपुं०एक०)। तिष्ठत्—ष्टा गतिनिवृत्तौ+शतृ (नपुं०एक०)। धावतः—धाव्+शतृ (पु०द्वि० बहुवचन)। अपः—आप्यन्ते सुखदुःखादिकमाभिरिति आपः, ताः अपः (स्त्री द्वि० बहुवचन)। मातरिश्वा—मातरि अन्तरिक्षे श्वयति गच्छतीति मातरिश्वा वायुः—शा०भा०। मातरिश्वन् इति प्रातिपदिकस्य पुं०प्र० एकवचनान्तं रूपम् (मातरिश्वन् +सु)।

**तदेजति तन्नैजति तदूरे तद्वन्तिके।**

**तदन्तरस्य सर्वस्य, तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः।।५।।**

**सन्दर्भ—**प्रस्तुत मन्त्र में आत्मा (ब्रह्म) का ही प्रकारान्तर से वर्णन किया गया है। मन्त्रों को पूर्वोक्त तथ्य की पुनरुक्ति में आलस्य नहीं लगता।



**अन्वय**—तत् एजति, तत् न एजति, तत् दूरे, तत् उ अन्तिके, तद् अस्य सर्वस्य अन्तः, तत् उ अस्य सर्वस्य बाह्यतः ।

**अर्थ**—वह (आत्मा, ब्रह्म) गतिशील है, वह गतिशील नहीं (भी) है। वह दूर है, और समीप (भी) है। वह इस सब (विश्व) के भीतर है, और इस सब के बाहर (भी) है।

**टिप्पणी**—अन्तः— यह रकारान्त अव्यय—पद (अन्तर) है। इसका अर्थ है 'भीतर'। अन्तः अभ्यन्तरे—शा०भा० । उ—अपि । तद्—तत्+उ । बाह्यतः (अपि)—बहिरपि । तद् ब्रह्म आत्मत्वेन अस्य सर्वस्य जगतः अन्तः अभ्यन्तरे सदपि बाह्यतः बहिरपि विद्यते । एवं जगतोऽन्तर्भूतत्वात् नियन्ता, प्राणिनामन्तर्भूतत्वाच्चान्तर्यामीति कथ्यते ।

**यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मन्येवानुपश्यति ।**

**सर्वभूतेषु चात्मानं, ततो न विजुगुप्सते ॥६॥**

**अन्वय**— यः तु सर्वाणि भूतानि आत्मनि एवं अनुपश्यति, आत्मानं च सर्वभूतेषु (पश्यति), (स) ततः न विजुगुप्सते ।

**अर्थ**— फिर जो ज्ञानी व्यक्ति (अव्यक्त से लेकर चराचर—पर्यन्त) समस्त भूतों को आत्मा में ही देखता है, तथा समस्त भूतों में आत्मा को ही देखता है, वह उस (अभेद—दर्शन) के कारण (किसी से) घृणा नहीं करता ।

**टिप्पणी**—विजुगुप्सते—वि+गुप्(गोपने) + सन्+लट् प्र०पु०एक० । गुप्—तिज्—किद्भ्यः 'सन्' सूत्र से 'सन्' प्रत्यय की प्राप्ति हुई है। यह इच्छार्थक प्रत्यय है। परन्तु गोपनार्थक 'गुप्' में सन् प्रत्यय 'गुपेर्निन्दायाम्' से निन्दा, कुत्सा या घृणा अर्थ में लगता है। ऐसा वृत्ति में कथित है। अतः 'विजुगुप्सते' का अर्थ होता है— निन्दा करता है, घृणा करता है। इसी प्रकार 'तिजेः क्षमायाम्' वृत्ति—वचन से 'तितिक्षते' क्रियापद क्षमा करने के अर्थ में बनता है। इसी प्रकार निवासार्थक कित् धातु से सन् प्रत्यय लगने पर 'चिकित्सति' क्रियापद चिकित्सा करने के अर्थ में बनता है— 'कित् व्याधिप्रतीकारे' (वृत्ति) ।

**यस्मिन्सर्वाणि भूतानि आत्मैवाभूद्विजानतः ।**

**तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ॥७॥**

**सन्दर्भ**— प्रस्तुत मन्त्र भी पूर्वमन्त्रेक्त अर्थ का शब्दान्तर से कथन कर रहा है ।

**अर्थ**— जिस अवस्था में आत्मा का विशेष ज्ञान— साक्षात्कारात्मक ज्ञान—प्राप्त किये हुए योगी की दृष्टि में समस्त चराचर जगत् आत्मा (ब्रह्म) ही हो गया, उस अवस्था में ऐसे एकत्व को देखने (अनुभव करने) वाले ज्ञानी को कैसा मोह और कैसा शोक? (अर्थात् वह एकत्वदर्शी योगी शोक—मोह से परे या रहित हो जाता है) ।

**टिप्पणी**—यस्मिन्— यस्मिन्काले, यस्यामवस्थायाम् । विजानतः—वि+ज्ञा अवबो—धने+शतृ, भा०एक० । विशेषज्ञानवतः, साक्षात्कारात्मकमनुभवात्मकं वा ज्ञानं प्राप्तस्य । तत्र—तस्मिन् काले, तस्यामवस्थायाम् । एकत्वम्—ऐकात्म्यम्, अभेदम्, अद्वैतम्, परमार्थतत्त्वम् (शा०भा०) । अनुपश्यतः—अनु+दृश् (पश्य) + शतृ,

भा०एक०। अनु अनुक्षणं सततं पश्यतः तत्त्वं साक्षात्कुर्वतः। को मोहः कः शोकः—एवं 'शोकमोहयोरविद्याकार्ययोरक्षेपेण (अर्थात् प्रश्नद्वारेण) असम्भवप्रदर्शनात् सकारणस्य (अर्थात् कारणभूतयाऽविद्याया सहितस्य) संसारस्यात्यन्तमेवोच्छेदः प्रदर्शितो भवति'। शा०भा० (कोष्ठों के शब्द स्वकीय हैं)।

**स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रण— मस्नाविर्ँ शुद्धमपापविद्धम्।**

**कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्य— तोऽर्थान् व्यद्धाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः।।८।।**

**सन्दर्भ—** विगत मन्त्रों द्वारा जिस आत्मा (ब्रह्म) का कथन किया गया है, उसका स्वरूपतः क्या लक्षण है, यह प्रस्तुत मन्त्र बताया जा रहा है।

**अन्वय—**स पर्यगात् शुक्रम् अकायम् अव्रणम् अस्नाविर्म शुद्धम् अपापविद्धम् कविः मनीषी परिभूः शाश्वतीभ्यः समाभ्यः याथातथ्यतः अर्थान् व्यवधात्।

**अर्थ—**वह (ब्रह्म) सर्व—व्यापक, शुक्ल (शुभ्र, दीप्तिमान्), शरीर से रहित, क्षत (घाव) से रहित, स्नायु—तन्तुओं (शिराओं, नसों) से रहित, निर्मल (अविद्यादि मल से रहित), पापों (धर्माधर्म—जनित) से रहित, सर्वज्ञ (ज्ञानी), सर्वोपरि स्थित एवं स्वयंसिद्ध है। वह परमेश्वर नित्य प्रजाओं के लिए यथार्थ रूप से (ठीक—ठीक) पदार्थों का विधान करता है।

**टिप्पणी—**पर्यगात्—परि इण् गतौ+लुङ् प्र०पु०एक०। इणो गा लुङि' इति सूत्रेण इणो गादेशः। शुक्रम्—शुभ्रं ज्योतिष्मिदीप्तिमत् (शा०भा०)। शुक्रं शुक्लं विज्ञानानन्दस्वभावम्। (उवटभाष्य)। वस्तुतस्तु रलयोरभेदात् शुक्रशुक्ल—शब्दो पर्यायौ एव। अकायम् अव्रणम् अस्नाविर्म अपापविद्धम्— प्रत्यकं बहुव्रीहिसमासः। मनीषी—मनसः ईषा मनीषा। शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम् तच्च टेः' इति वार्तिकेन मनस्— शब्दस्य अस् इत्यस्य स्थाने 'ईषा' इत्यस्य ईकारः, एवं च 'मनीषा' सिध्यति। मनीषा (बुद्धिः) अस्त्यस्य इति मनीषी—मनीषी+इनिः।

**अन्धं तमः प्रविशन्ति ये अविद्यामुपासते।**

**ततो भूय इवते तमो ये उ विद्यायाँरताः।।९।।**

**सन्दर्भ—**प्रस्तुत मन्त्र की लम्बी भूमिका बनाते हुए अन्ततः भाष्यकार शंकराचार्य का कथन है कि प्रस्तुत मन्त्र में 'विद्या' अर्थात् देवविषयक ज्ञान का कर्म से सम्बन्धित तत्त्व के रूप में उपन्यास या प्रस्ताव किया गया है, परमात्म—ज्ञान का नहीं। उसका तो कर्म के साथ समन्वय या समुच्चय हो नहीं सकता। 'तत्र को मोहः कः शोकः' इत्यादि कथन करके तथा परमात्म—ज्ञान को मोक्षफलक बताकर, कर्म के साथ उसके समुच्चय की कथा ही श्रुति ने समाप्त कर दी है। 'आत्मैकत्व—विज्ञान' रूप जो परमात्मज्ञान है, उसका समुच्चय किसी भी अन्य प्रकार के ज्ञान या कर्म के साथ नहीं हो सकता। प्रस्तुत श्लोक में विद्या (ज्ञान) और अविद्या (कर्म) में से प्रत्येक के पृथक्—पृथक्, अनुष्ठान की निन्दा दोनों के समुच्चय की दृष्टि से की गयी है। पृथक्—पृथक् अनुष्ठान करने वालों की निन्दा की गयी है, विद्या और अविद्या की निन्दा नहीं की गई है। श्रुति का वह

उद्देश्य नहीं है क्योंकि दोनों के क्रमशः 'विद्यया देवलोकः' तथा 'कर्मणा पितृलोकः' फल बताये गये हैं। जब ये दोनों ही शास्त्र-विहित हैं, तब ये अकरणीय कैसे कहे जा सकते हैं। शास्त्र-विहित कुछ भी अकरणीय या अकार्य नहीं होता। विद्या और अविद्या के इसी पार्थक्य-पृथक्-पृथक् अनुष्ठान-की निन्दा प्रस्तुत नवम् मन्त्र में की जा रही है। अन्य सिद्धान्तावलम्बी आत्मज्ञान और कर्म का ही समुच्चय अपेक्षित या वांछनीय मानते हुए, उनके पार्थक्य की निन्दा को ही प्रस्तुत मन्त्र का प्रतिपाद्य मानते हैं। आर्य समाज के सुप्रसिद्ध दिवंगत मनीषी महात्मा नारायणस्वामी ने इस पक्ष को सर्वाधिक स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किया है, अतः उसे ही यहाँ उद्धृत किया जा रहा है-

भसिद्धान्त यह है कि ज्ञान और कर्म, दोनों का प्रयोग साथ-साथ करना चाहिये। वेदों का यह शाश्वत सिद्धान्त है जो तीनों कालों में एक-जैसी उपयोगिता रखता है। ज्ञान उपलब्ध करके, उसको कार्य में परिणत करना ही मनुष्य-जीवन का सबसे बड़ा उद्देश्य है। इसलिए वेद नित्योपयोगी समझे जाते हैं"।

**अन्वय-** ये अविद्यामुपासते (ते) अन्धं तमः प्रविशन्ति। ये विद्यायां रताः, ते उ ततः भूय इव तमः प्रविशन्ति।

**अर्थ-** जो मनुष्य केवल 'विद्या' अर्थात् विद्या (देवता-ज्ञान) से भिन्न (अग्निहोत्रादि) देव-कर्म की उपासना करते हैं, वे (जन्म-मरण रूप) घोर अन्धकार में पड़ते हैं और जो लोग उसे छोड़कर केवल देवविद्या की प्राप्ति में ही लीन रहते हैं, वे तो उनसे भी अधिक अज्ञान रूप अन्धकार में डूब जाते हैं।

**टिप्पणी-**अविद्या-विद्याय अन्या अविद्या, तां कर्मैत्यर्थः (शा०भा०)। 'अविद्या' शब्द में 'नञ्' के प्रतिनिधि-भूत 'अ' का अर्थ 'अभाव' नहीं अपितु 'अन्य' या 'भिन्न' है। विद्या से भिन्न तो कर्म ही है, अतः 'अविद्या' का अर्थ अग्निहोत्रादि देवकर्म है। विद्या-यह भी देवविद्या है, आत्मविद्या नहीं।

**अन्यदेवाहुर्विद्यया अन्यदाहुरविद्यया।**

**इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचक्षिरे ॥१०॥**

**सन्दर्भ-**विद्या और अविद्या के द्वारा साध्य फल भिन्न-भिन्न हैं, यह बात प्रस्तुत दशम मन्त्र में कही गयी है।

**अन्वय-**विद्यया अन्यत् एव आहुः, अविद्यया अन्यत् आहुः। इति धीराणां शुश्रुम ये नः तत् विचक्षिरे।

**अर्थ-**विद्या के द्वारा फल (साध्य) दूसरा ही बतलाते हैं, और अविद्या के द्वारा (साध्य फल) दूसरा। इस प्रकार (हमने) बुद्धिमानों के (वचन) सुने हैं, जिन्होंने हम लोगों के लिए उस (कर्म और ज्ञान) की व्याख्या की थी।

**टिप्पणी-**विद्यया-देवविद्यया देवोपासनया। अन्यत्-भिन्नम्। अविद्यया-विद्याया अन्य अविद्या कर्म, तथा इत्यर्थः। इदं च कर्म शास्त्रविहितमग्निहोत्रादिरूपम्। शुश्रुम-श्रु+लिट् उ०पु०बहु०। विचक्षिरे-वि+चक्षिङ्+लिट्+प्र०पु०, बहु० (आत्मनेपदम्)।

**विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयँ सह।**

**अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते ॥११॥**

**सन्दर्भ**—चूँकि (पिछले मन्त्र में) विद्या और अविद्या के फल भिन्न-भिन्न बताए गये, जैसा कि 'कर्मणा पितृलोको, विद्यया देवलोकः' यह श्रुति-वचन भी प्रमाणित करता है, अतः प्रस्तुत मन्त्र में दोनों के समुच्चय की वांछनीयता बताते हुए, उसका फल प्रस्तुत किया जा रहा है।

**अन्वय**—यः विद्यां च अविद्यां च (इति) तत् उभयं सह वेद, (सः) अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्यया अमृतम् अश्नुते।

**अर्थ**—जो मनुष्य विद्या-देवता-ज्ञान, और अविद्या-अग्निहोत्रादि शास्त्र-विहित कर्म, इन दोनों को साथ-साथ अर्थात् एक ही पुरुष द्वारा अनुष्ठेय जानता है, वह अविद्या (कर्म) के द्वारा 'मृत्यु'—मारक चित्तमल (अर्थात् तज्जन्य स्वाभाविक या सहज कर्म और ज्ञान) को पार करके, विद्या (देवता-ज्ञान) के द्वारा 'अमृत' (देवतात्म-भाव) को प्राप्त कर लेता है।

**टिप्पणी**—विद्या-विद्+क्यप् (करणे) + टाप् स्त्रियाम्। अविद्या-विद्याया इतरा (भिन्न) इत्यविद्या-नञ्+विद्या (नञ् तत्पुरुषः)। अमृतम्-नञ्+मृतम् (नञ् तत्पुरुषः)। न मृतं मरणमिति अमृतम् (भावेक्तः नपुंसके)। तीर्त्वा-तृ प्लवनसन्तरणोः (भ्वा०) + त्वा। अश्नुते-अश् व्याप्तौ (आत्मने०) + लट् प्र०पु०एक०। स्वादिगणे पठितोऽयं धातुः। अश् (भोजने) इत्यस्य अश्नाति अश्नीतः इत्यादिरूपाणि भवन्ति। क्यादिगणे पठितोऽयम्।

**अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते।**

**ततो भूय इवते तमो य उ सम्भूत्याँरताः॥१२॥**

**सन्दर्भ**— प्रस्तुत मन्त्र में व्यक्त और अव्यक्त की समुचित उपासना की वांछनीयता बताने के लिए उनकी पृथक्-पृथक् उपासना की निन्दा की गयी है।

**अन्वय**— ये असम्भूतिम् उपासते, ते अन्धं तमः प्रविशन्ति। ये सम्भूत्याम् उरताः, ते ततो भूयः इव तमः (प्रविशन्ति)।

**अर्थ**— जो अव्यक्त प्रकृति की उपासना करते हैं वे घोर अन्धकार में प्रवेश करते हैं, और केवल व्यक्त अर्थात् कार्य ब्रह्म (हिरण्यगर्भ) की उपासना में निरत रहते हैं, वे उससे भी अधिक (घोरतर) अन्धकार में पड़ते हैं।

**टिप्पणी**—सम्भूतिम्-सम्भूतिः सम्भवनम् उत्पत्तिः, सा यस्य कार्यस्य तत् कार्यम् सम्भूतिः कार्यब्रह्मेत्यर्थस्ताम्। असम्भूतिम्- न सम्भूतिरित्यसम्भूतिः (नञ् तत्पु०) सम्भूतेर्भिन्ना कारणभूता प्रकृतिः, ताम्। उन्-कर्मोपसंग्रहार्थीयो निपातः (उबट)। य उ इत्यस्य ये च इत्यर्थः। इन-इवशब्दोन्र्थकः (उबट, महीधर)।

**अन्यदेवाहुः सम्भवादन्वदाहुरसम्भवात्।**

**इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचक्षिरे॥१३॥**

**सन्दर्भ**—अगले मन्त्र में प्रतिपादित असम्भूति और सम्भूति की उपासना के समुच्चय का कारण, दोनों की पृथक्-पृथक् उपासना का पृथक्-पृथक् फल होना प्रस्तुत मन्त्र में प्रस्तावित है।

**अन्वय**— सम्भवात् अन्यत् एव आहुः, असम्भवात् अन्यत् आहुः। इति धीराणां (वचः) शुश्रुमः ये नः तत् विचक्षिरे।

**अर्थ**—(मनीषियों ने) कार्यब्रह्म (की उपासना) से दूसरा (भिन्न) ही (अणिमादि ऐश्वर्य की प्राप्ति रूप) फल कहा है और अव्यक्त प्रकृति (की उपासना) से दूसरा ही। इस प्रकार बुद्धिमान् पुरुषों के वचन (हमने) सुने हैं, जिन्होंने हमसे उसकी व्याख्या की है।

**टिप्पणी**—नः—अस्मान् (अस्मच्छब्दस्य द्वि० बहुवचनस्यान्वादेशः)। तत्—अन्यदन्यत् (फलम्), द्वि०एक०। उभयत्र द्वितीया विभक्तिः अकथितं च' इति सूत्रेण। चक्षिङ् प्रकथने इत्यतः अन्वर्थकत्वात् नः' इत्यत्र चक्षिङो गौणे कर्मणि द्वितीया। धीराणाम्—बुद्धिमताम् इत्यर्थः।

**सम्भूतिं च विनाशं च यस्तद्वेदोभयँसह।**

**विनाशेन मृत्युं तीर्त्वाऽसम्भूत्याऽमृतमश्नुते ॥14 ॥**

**सन्दर्भ**—चूँकि सम्भूति और असम्भूति, दोनों की पृथक्-पृथक् उपासनाओं के पृथक्-पृथक् फल (अधूरे-अपूर्ण) हैं, अतः एक पुरुष के द्वारा दोनों की समुचित उपासना ही, पुरुषार्थ होने से, करणीय है। यही प्रस्तुत मन्त्र का प्रतिपाद्य है।

**अन्वय**—यः तत् उभयं, सम्भूतिं च विनाशं च सह वेद, (सः) विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा असम्भूत्या अमृतम् अश्नुते।

**अर्थ**—जो उन दोनों, प्रकृति और विनाशी कार्य ब्रह्म, को साथ-साथ (फल देने वाला) जानता है, वह 'विनाश' अर्थात् हिरण्यगर्भ नामक कार्यब्रह्म की उपासना से 'मृत्यु' (अर्थात् अनैश्वर्य-असमृद्धि से उत्पन्न दुःख-समूह) को पार करके 'असम्भूति' (अर्थात् समस्त भूतों का कारण-प्रकृति) की उपासना से 'अमृत' (अमृतत्व अर्थात् प्रकृति-लय) को प्राप्त कर लेता है।

**टिप्पणी**—सम्भूतिम्-असम्भूतिं प्रकृतिमित्यर्थः। पृषोदरादित्वादवर्णलोपः। यद्वा, सम्भवत्यस्यां (कार्यम्) इति-सम्भूतिः सर्वबीजभूता कारणात्मिका प्रकृतिः। विनाशः-विनाशोऽस्यास्तीति विनाशः (विनाश+अच्प्रत्ययो मत्वर्थीयः) हिरण्यगर्भाख्यं कार्यब्रह्मशंकरः, विनाशधर्मकं शरीरम्-महीधरः। **हिरण्यमेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।**

**तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये ॥15 ॥**

**सन्दर्भ**—पीछे कहा गया कि जो अग्निहोत्रादि शास्त्रोक्त कर्म एवं देवताविषयक ज्ञान को समुचित रूप से (साथ-साथ) करता है, वह कर्म के द्वारा मृत्यु को पार करके विद्या (देवता-ज्ञान) के द्वारा अमृतत्व की प्राप्ति कर लेता है। 'किससे अमृतत्व प्राप्ति करता है', यह कहा जा रहा है— आदित्य-मण्डल एवं दक्षिण नेत्र में जो 'सत्य' नामक ब्रह्म है, उसकी उपासना करता हुआ एवं शास्त्रोक्त कर्म करता हुआ साधक अन्तकाल आने पर, पूषा अर्थात् आदित्य से अपनी अमृतत्व-प्राप्ति के द्वार की याचना 'हिरण्यमेन पात्रेण'—इत्यादि प्रस्तुत मन्त्र में कर रहा है—

**अन्वय**—पूषन्! हिरण्यमेन पात्रेण सत्यस्य मुखम् अपिहितम्। सत्यधर्माय दृष्टये त्वं तत् अपावृणु।

**अर्थ—** हे जगत्पोषक सूर्य! 'सत्य' (आपके ज्योतिर्मय मण्डल में स्थित ब्रह्म) का द्वार देदीप्यमान पात्र से ढका हुआ है। उस 'सत्य' को (हृदय में) धारण करने वाले (अथवा, यथार्थ धर्म का अनुष्ठान करने वाले) मुझको दर्शन देने के लिए, उसे हटा लीजिये।

**टिप्पणी—**हिरण्यमयेन—हिरण्यस्य विकारो हिरण्यमयम्, तेन। विकारार्थे मयट् प्रत्ययः, निपातनात् यकास्य लोपः। ज्योतिर्मयेन इत्यर्थः। पात्रेण—पात्रेणैव अपिधानभूतेन, यद्वा आवरणेन। अपिहितम्—अपि +धा+क्तः। 'दधातेर्हि' इति सूत्रेण 'धा' इत्यस्य स्थाने 'हि' आदेशः। आवृतमाच्छन्नं वाऽर्थः।

**पूषन्नेकर्षे यम सूर्य प्राजापत्य व्यूह रश्मीन् समूह तेजो,**

**यत्ते रूपं कल्याणतमं तत्ते पश्यामि योऽसावसौ पुरुषः सोऽमस्मि ॥16॥**

**सन्दर्भ—**प्रस्तुत मन्त्र में भी पिछले मन्त्र के पूषा (सूर्य) देवता से प्रार्थना की गई है कि वे आँखों को चकाचौंध उत्पन्न करने वाली रश्मियों को हटा लें, अपने प्रखर तेज को बटोर लें, संहृत कर लें ताकि उनके कल्याण—मय परमस्वरूप को देखा जा सके।

**अन्वय—** पूषन्! एकर्षे! यम!सूर्य! प्राजापत्य! रश्मीन् व्यूह, तेजः समूह। यत् ते कल्याणतमं रूपं तत् ते (प्रसादात्) पश्यामि। यः असौ असौ पुरुषः सः अहम् अस्मि।

**अर्थ—** हे सर्व—पोषक! हे एकचारिन् (एकाकी चलने वाले)! (अथवा जगत् के एकमात्र द्रष्टा (चक्षु)! हे सर्व—नियामक! हे सूर्य! हे प्रजापति के पुत्र! अपनी किरणों को हटा लीजिए (दूर कर लीजिए) और तेज को समेट लीजिए। आपका जो अतिशय कल्याणमय स्वरूप है, उसे मैं आपके अनुग्रह से देख रहा हूँ। जो वह (अर्थात् आपके सुन्दर तेजोमण्डल में स्थित) है, एवं जो मेरे प्राणों (हृदय) में (रचा—बसा) पुरुष है, वही मैं हूँ।

**टिप्पणी—** पूषन्—पुष्णातीति पूषा, तत्सम्बद्धौ पूषन्। पुष् +कनिप्रत्ययः (सि०कौ०)। माधवीय—धातुवृत्तौ भ्वादि—पुषधातोः कनिन् इति प्रत्ययेनास्य सिद्धिः प्रदर्शिता। एकर्षे—एकश्चासौ ऋषिश्चेति एकर्षिः (कर्मधा०), तत्सम्बद्धौ एकर्षे! ऋषति गच्छतीति ऋषिः (शा०भा०)। गच्छति नभसः पारमित्यर्थः। 'ऋष् गतौ' धातोः इन्—प्रत्यये ऋषिशब्दः सिध्यति।

**वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तं शरीरम्।**

**ऊँ क्रतो स्मर कृतं स्मर, क्रतो स्मर कृतं स्मर ॥17॥**

**सन्दर्भ—** प्रस्तुत मन्त्र में उपासक अन्तिम प्रस्थान की वेला में सत्यात्मक अग्न्याख्य ब्रह्म से प्रार्थना करता है, जैसा बृ० भाष्य में शंकराचार्य ने स्पष्ट किया है—**अर्थदानीमात्मनः संकल्पभूतां मनसि व्यवस्थितामग्निदेवतां प्रार्थयते— ऊँ क्रतो!**

**अन्वय—**वायुः अमृतम् अनिलं (प्राप्नोतु)। अथ इदं शरीरं भस्मान्तं (स्यात्)। ऊँ क्रतो ! स्मर, कृतं स्मर, क्रतो स्मर कृतं स्मर।

**अर्थ**—हे संकल्पात्मक अग्निदेव! मेरा अध्यात्म (आभ्यन्तरिक) प्राण—वायु अविनाशी अधिदैवत (बाह्य) वायु—तत्त्व अर्थात् सूत्राख्य मुख्य प्राण को प्राप्त हो जाय। अनन्तर यह स्थूल शरीर भस्मसात् हो जाय, भस्म होकर (पृथ्वी—तत्त्व में) मिल जाय। हे ऊँ ! (ऊँ प्रतीक में ध्येय), हे संकल्पात्मक (अथवा, यज्ञात्मक) अग्निदेव! कृत्य को याद करें।

**टिप्पणी**— वायुः—एकादशेन्द्रियाणि, पंचप्राणाः, बुद्धिश्चेति सप्तदशात्मकं लिंगं वायुरिति शब्देन गृहीतम्। अमृतम्—अविनाशिनम्। अनिलम्—वायुम्। अयमविनाशी वायुः सूत्रात्मा, तथा चोक्तं बृहदारण्यके—सूत्रेण वायुना हि गौतम! अयंच लोकः परश्च लोकः सर्वाणि च भूतानि सन्दधानि भवन्ति।

**अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।**

**युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते ननउक्तिं विधेम।।18।।**

**सन्दर्भ**— प्रस्तुत मन्त्र के द्वारा उपासक अग्नि देव से परलोक—यात्रा के लिए मार्ग की याचना कर रहा है।

**अन्वय**—अग्ने! देव! विश्वानि वयुनानि विद्वान् राये सुपथा अस्मान् नय। अस्मत् जुहुराणम् एनः युयोधि। ते भूयिष्ठां ननउक्तिं विधेम।

**अर्थ**—हे अग्निदेव! हमारे सम्पूर्ण कर्मों को जानने वाले आप (शोभनकर्मफल—भोग रूप) ऐश्वर्य के लिए हमें अच्छे मार्ग से ले चलिये। हमसे कुटिल मार्गानुसरण रूप पाप को अलग कर दीजिये (अर्थात् हमें उल्टे मार्ग पर चलने से बचाइये) हम आपके लिए अत्यधिक (ढेर—सारा) नमस्कार—वचन कहते हैं।

**टिप्पणी**—सुपथा—शोभनः पन्थाः सुपन्थाः (कर्मधा०स०), तेन, सुपथा। राये—रै+डे (च०एक०) ऋ रै+ए ऋ र् + आय्+ए ऋ राये धनाय ऐश्वर्याय। विश्वानि—विश्व (सर्वनाम)+प्र०बहु०। सर्वाणीत्यर्थः। त्रिलिङ्गोऽयं शब्दः (विश्वः विश्वौ विश्वे, विश्वं विश्वे विश्वानि, विश्वा विश्वे विश्वाः इत्यादि रूपाणि भवन्ति।) यदा चायं शब्दो नाम' (संज्ञा) तद विष्णुवाचको ब्रह्माण्डवाचकश्च केवलं नपुंसकलिङ्गे एव भवति। यथेदं विश्वम्, विश्वमिदं वरिष्ठमित्यादि। विद्वान्—विद् (ज्ञाने) +शतृ—वसु (विदेः शतुर्वसुः 7।1।36), विद्वस्+सु (पु०प्र०एक०)। वसोरभावे विदत् (विद्+शतृ) इति प्रातिपदिकम्, विदन् इति पु०प्र०एक० रूपम्। एनः—सकारान्तो नपुंसकलिङ्ग शब्दः। एनः पापं, दुरितम्। मन्त्रे 'एनः' द्वितीयैकवचनम्। युयोधीतिक्रियायाः कर्मणि कर्मणि द्वितीया' इत्यनेन सूत्रेण द्वितीया विभक्तिः।

#### 4.4 प्रमुख उपनिषदों का परिचय—

उपनिषद् मुख्यतया 'ब्रह्मविद्या' का द्योतक है, क्योंकि इस विद्या के अनुशीलन से मुमुक्षु जनों की संसार—बीजभूता अविद्या नष्ट हो जाती है (विशरण), वह ब्रह्म की प्राप्ति करा देती है (गति) तथा मनुष्य के गर्भवास आदिक दुःख सर्वथा शिथिल हो जाते हैं (अवसादन)। गौण अर्थ में यह शब्द पूर्वोक्त ब्रह्मविद्या के प्रतिपादक ग्रन्थ—विशेष का भी बोधक है और इसी अर्थ में इसका प्रयोग यहाँ किया जा रहा है। उपनिषद्

शब्द की व्युत्पत्ति जो आज अधिक प्रचलित है, वह 'उप' एवं 'नि' उपसर्गों से युक्त सद (बैठना) धातु से सिद्ध की जाती है। इस प्रकार अर्थ निकलता है— (गुरु के) निकट विनम्रता पूर्वक बैठना (रहस्य—ज्ञान के लिए)। अर्थात् गुरु के निकट विनम्रतापूर्वक बैठ कर प्राप्त किया गया रहस्य—ज्ञान।

### ईश—उपनिषद्—

यह माध्यन्दिनशाखीय यजुर्वेद—संहिता का 40 वाँ अध्याय है। आद्य पदों (ईशावास्यमिदं सर्वम्) के आधार पर इसका यह नामकरण है। इसमें केवल 18 मन्त्र हैं, जिनमें ज्ञानदृष्टि से कर्म की उपासना का रहस्य समझाया गया है। यह उपनिषद् कर्म—संन्यास का पक्षपाती न होकर यावज्जीवन निष्काम भाव से कर्म—सम्पादन का अनुरागी है और इसी का अनुवर्तन भगवद्गीता अनेक युक्तियों के उपन्यास के साथ करती है। यहाँ अद्वैतभावना का स्पष्ट प्रतिपादन है। ब्रह्म के स्वरूप के वर्णन के अनन्तर विद्या—अविद्या तथा सम्भूति—असम्भूति का विवेचन है।

### केन—उपनिषद्—

अपने आरम्भिक पद (केनेषितं पतति) के कारण यह उपनिषद् 'केन' तथा अपनी शाखा के नाम पर 'तवलकार' उपनिषद् कहलाता है। इस छोटे, परन्तु मार्मिक उपनिषद् में केवल चार खण्ड हैं। प्रथम खण्ड में उपास्य ब्रह्म तथा निर्गुण ब्रह्म में अन्तर बतलाया गया है। दूसरे में ब्रह्म के रहस्यमय रूप का संकेत है। तृतीय और चतुर्थ खण्ड में उमा हेमवती के रोचक आख्यान द्वारा परब्रह्म की सर्वशक्तिमत्ता तथा देवताओं की अल्पशक्तिमत्ता का सुन्दर निदर्शन है। छोटा होने पर भी दार्शनिक दृष्टि से यह पर्याप्त रूपेण महनीय है।

### कठ—उपनिषद्—

कृष्णयजुर्वेद की कठशाखा का अनुयायी यह उपनिषद् अपने गम्भीर अद्वैत तत्त्व के लिए नितान्त प्रख्यात है। इसमें दो अध्याय तथा प्रत्येक अध्याय में तीन वल्लियाँ हैं। तैत्तिरीय आरण्यक में संकेतित नचिकेता की उपदेशप्रद कथा से यह आरम्भ होता है। नचिकेता के विशेष आग्रह करने पर यह उस अद्वैत तत्त्व का मार्मिक तथा हृदयंगम उपदेश देते हैं। 'नेह नानास्ति किंचन' इस उपनिषद् का गम्भीर शंखनाद है। नित्यों में नित्य, चेतनों में चेतन वह एक ब्रह्म सब प्राणियों की आत्मा में निवास करता है। उसी का दर्शन शान्ति का एकमात्र साधन है। योग ही उसके साक्षात्कार का प्रधान साधन है। मूँज से इषीका (सीक) के समान इस शरीर के भीतर विद्यमान आत्मा की उपलब्धि योग द्वारा करनी चाहिये— यही इसका व्यावहारिक उपदेश है।

### प्रश्नोपनिषद्—

इस उपनिषद् में छः ऋषि ब्रह्मविद्या की खोज में महर्षि पिप्पलाद के समीप जाते हैं और उनसे आध्यात्मविषयक प्रश्नों का उत्तर पूछते हैं। प्रश्नों के उत्तर में निबद्ध होने से इसका 'प्रश्न' उपनिषद् नाम



सर्वथा सार्थक है। प्रश्नों का विषय अध्यात्म-जगत् की मान्य समस्यायें हैं, जिनके समीक्षण के कारण पिप्लाद एक उदात्त तत्त्वज्ञानी के रूप में हमारे सामने आते हैं। मीमांस्य प्रश्न है— 1. प्रजा की उत्पत्ति कहाँ से होती है? 2. कितने देवता प्रजाओं का धारण करते हैं तथा कौन इनको प्रकाशित करता है तथा कौन सर्वश्रेष्ठ है? 3. प्राणों की उत्पत्ति, शरीर में आगमन तथा उक्रमण आदि विषयक प्रश्न 4. स्वप्न, जागरण तथा स्वप्नदर्शन आदि विषयक प्रश्न 5. ओंकार पुरुष की उपासना तथा उससे लोकों का विजय 6. षोडशकला-सम्पन्न पुरुष की विवेचना। इन प्रश्नों के उत्तर में अध्यात्म की समस्त समस्याओं का विवेचन बड़ी सुन्दरता तथा गम्भीरता के साथ किया गया है। अक्षर ब्रह्म ही इस जगत् की प्रतिष्ठा बतलाया गया है।

### मुण्डक-उपनिषद्-

(तीन मुण्डक तथा प्रत्येक के दो खण्ड) यह अथर्ववेदीय उपनिषद् मुण्डक-सम्पन्न व्यक्तियों) के निमित्त निर्मित है। इस उपनिषद् में ब्रह्मा अपने ज्येष्ठ पुत्र अथर्वा को ब्रह्मविद्या का उपदेश देते हैं। यज्ञीय अनुष्ठान अदृढरूप प्लव है, जिसके द्वारा संसार का संतरण कभी नहीं हो सकता है। इष्टापूर्ण- यज्ञादि अनुष्ठान को ही श्रेष्ठ मानने वाले व्यक्ति स्वर्गलोक पाकर भी अन्ततः इस भूतल पर आते हैं। इस प्रकार कर्मकाण्ड की हीनता तथा दोषों के अनन्तर ब्रह्मज्ञान की श्रेष्ठता प्रतिपादित है। द्वैतवाद का प्रधान स्तम्बरूप द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया' मन्त्र इस उपनिषद् में आता है। वेदान्त' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग यहीं उपलब्ध होता है। ब्रह्मज्ञानी के ब्रह्म में लय प्राप्त करने की तुलना नामरूप को छोड़कर नदियों के समुद्र में अस्त होने से दी गई है। इसमें सांख्य तथा वेदान्त के तथ्यों का भी यत्किंचित् प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

### माण्डूक्य-उपनिषद्-

आकार में जितना स्वल्पकाय है, सिद्धान्त में उतना ही विशाल है। इसमें केवल 12 खण्ड या वाक्य हैं, जिनमें चतुष्पाद आत्मा का बड़ा ही मार्मिक तथा रहस्यमय विवेचन है। इस उपनिषद् की ऊँकार की मार्मिक व्याख्या करने का श्रेय प्राप्त है। ऊँकार में तीन मात्रायें होती हैं तथा चतुर्थ अंश अमात्र' होता है। चैतन्य की तदनुरूप चार अवस्थायें होती हैं- जागरित, स्वप्न, सुषुप्ति तथा चैतन्य की अव्यवहार्य तुरीय दशा। इन्हीं का आधिपत्य धारण करने वाला आत्मा भी क्रमशः चार प्रकार का होता है- वैश्वानर, तैजस, प्राज्ञ तथा प्रपंचोपशमरूपी शिव, जिनमें अन्तिम ही चैतन्य आत्मा का विशुद्ध रूप है। इसके ऊपर गौडापदाचार्य ने चार खण्डों में विभक्त अपनी कारिकायें (माण्डूक्य-कारिका) लिखी है, जो मायावादी अद्वैत-वेदान्त की पूर्ण प्रतिष्ठा मानी जाती है।

### तैत्तिरीय-उपनिषद्-

यह तैत्तिरीय आरण्यक का (सप्तम, अष्टम तथा नवम खण्डों का) ही सम्मिलित अंश है। आरण्यक के सप्तम प्रपाठक का नाम है 'संहिती उपनिषद्', जो यहाँ 'शीक्षावल्ली' के नाम से विख्यात है। आरण्यक

का वारुणी उपनिषद् (प्रपाठक आठ और नव) यहाँ ब्रह्मानन्दवल्ली और भृगुवल्ली के नाम से प्रख्यात है। अतः ब्रह्मविद्या की दृष्टि से वारुणी उपनिषद् का ही प्राधान्य है, परन्तु चित्त की शुद्धि तथा गुरु-कृपा की प्राप्ति के निमित्त शिक्षावल्ली का भी गौणरूपेण उपयोग है। इसमें कई प्रकार की उपासना तथा शिष्य और आचार्य-सम्बन्धी शिष्टाचार का निरूपण है। 11वें अनुवाक में स्नातक के लिए उपयोगी शिक्षाओं का एकत्र निरूपण है, जिससे शिक्षा के उच्च आदर्श का पूर्ण परिचय प्राप्त होता है। ब्रह्मानन्द वल्ली में ब्रह्मविद्या का निरूपण है, तदनन्तर भृगुवल्ली में ब्रह्मप्राप्ति का मुख्य साधन 'पंचकोषविवेक' वरुण तथा भृगु के संवाद रूप से वर्णित है।

### ऐतरेय-उपनिषद्-

ऐतरेय आरण्यक के द्वितीय आरण्यक के अन्तर्गत चतुर्थ से लेकर षष्ठ अध्यायों का नाम 'ऐतरेय-उपनिषद्' है। इसमें तीन अध्याय हैं, जिनके द्वितीय तथा तृतीय अध्याय तो एक-एक खण्ड के हैं। प्रथम अध्याय में दो खण्ड हैं, जिसमें सृष्टितत्त्व का मार्मिक विवेचन है, मनुष्य का शरीर ही पुरुष के लिए उपयुक्त आयतन सिद्ध किया गया है, जिसके भिन्न-भिन्न अवयवों में देवताओं ने प्रवेश किया, तदनन्तर परमात्मा उसके मूर्ध-सीमा को विदीर्ण कर प्रवेश करता है, तथा जीवभाव को प्राप्त कर भूतों के साथ तादात्म्य रखता है। तदनन्तर गुरुकृपा से बोध के अनन्तर सर्वव्यापक शुद्धस्वरूप का साक्षात्कार होता है तथा 'इन्द्र' की संज्ञा प्राप्त होती है। अन्तिम अध्याय में 'प्रज्ञान' की विशेष महिमा प्रदर्शित है जिससे निःसन्देह यह उपनिषद् आदर्शवाद का प्रतिपादक सिद्ध होता है।

### छान्दोग्य-उपनिषद्-

यह सामवेदीय उपनिषद् प्राचीनता, गम्भीरता तथा ब्रह्मज्ञान-प्रतिपादन की दृष्टि से उपनिषदों में नितान्त प्रौढ़, प्रामाणिक तथा प्रमेयबहुल है। इसमें आठ अध्याय या प्रपाठक हैं जिनमें अन्तिम तीन अध्यात्म-ज्ञान की दृष्टि से नितान्त महत्त्वपूर्ण हैं। इसके आदिम अध्यायों में अनेक विद्याओं का, ऊँकार तथा साम के गूढ़ स्वरूप का विवेचन मार्मिकता से किया गया है। द्वितीय अध्याय के अन्त में 'शौव उद्गीथ' हैं, जो केवल भौतिक स्वार्थ-पूर्ति के लिए यागानुष्ठान तथा सामगायन करने वाले व्यक्तियों के ऊपर मार्मिक व्यंग्य है। तृतीय अध्याय में सूर्य की देवमधु के रूप में उपासना है। गायत्री का वर्णन, घोर आंगिरस के द्वारा देवकीपुत्र कृष्ण को अध्यात्म-शिक्षा तथा अन्त में अण्ड से सूर्य के जन्म का सुन्दर विवेचन है। इस अध्याय का यह प्रसिद्ध सिद्धान्त- 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'-सब कुछ ब्रह्म ही है, अद्वैतवाद का विजयघोष है। चतुर्थ अध्याय में रैक्व का दार्शनिक तथ्य, सत्यकाम जाबाल तथा उसकी माता की कथा, उपकोशल को सत्यकाम जाबाल से ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति का विस्तृत तथा रोचक विवेचन है। पंचम प्रपाठक में प्रवाहण जैबलि के दार्शनिक सिद्धान्त तथा केकय अश्व-पति के सृष्टि-विषयक तथ्यों का विशद वर्णन है, जिनमें छः विभिन्न दार्शनिकों के सिद्धान्तों का समन्वय किया गया है। षष्ठ प्रपाठक छान्दोग्य का नितान्त महनीय अध्याय है

जिसमें महर्षि आरुणि के ऐक्यप्रतिपादक सिद्धान्तों की रोचक व्याख्या है। जिस प्रकार याज्ञवल्क्य बृहदारण्यक के सर्वश्रेष्ठ अध्यात्म-उपदेश हैं, उसी प्रकार आरुणि छान्दोग्य के सर्वतोमान्य दार्शनिक हैं। इनके सिद्धान्त इतने सुन्दर, प्रामाणिक तथा तर्कपूर्ण हैं कि शतपथ के अनुसार याज्ञवल्क्य को आरुणि के शिष्य होने में हमें कोई आश्चर्य नहीं प्रतीत होता। तत्त्वमसि—आरुणि की अध्यात्म-शिक्षा का पीठस्थानीय मन्त्र है। सप्तम प्रपाठक में सनत्कुमार तथा नारद का नितान्त विश्रुत वृत्तान्त है जिसमें मंत्रविद् नारद आत्मविद्या की शिक्षा के निमित्त महर्षि सनत्कुमार के पास आते हैं। इस उपदेश का पर्यवसान होता है—भयो वै भूमा तदमृतम्, अथ यदत्यं तन्मर्त्यम्।” अतः इसे भूमा-दर्शन कह सकते हैं। अन्तिम प्रपाठक में इन्द्र तथा विरोचन की कथा है तथा आत्मप्राप्ति के व्यावहारिक उपायों का सुन्दर संकेत किया गया है।

### बृहदारण्यक उपनिषद्—

परिमाण में ही विशाल नहीं है, प्रत्युत तत्त्वज्ञान के प्रतिपादन में भी गम्भीर तथा प्रामाणिक है। यह बृहत्तम, विपुलकाय तथा प्राचीनतम उपनिषद् सर्वत्र स्वीकृत है। इसमें छः अध्याय हैं। इस उपनिषद् के सर्वस्व दार्शनिक हैं याज्ञवल्क्य, जिनकी उदात्त अध्यात्म-शिक्षा से यह ओतप्रोत है। प्रथम अध्याय में मृत्यु के द्वारा समग्र पदार्थों के ग्रास किये जाने का, प्राण की श्रेष्ठता विषयक रोचक आख्यायिका तथा सृष्टि विषय सिद्धान्तों का वर्णन है। द्वितीय अध्याय के आरम्भ में अभिमानी गार्ग्य तथा शान्तस्वभाव काशी के राजा अजातशत्रु का रोचक संवाद है। इसी अध्याय में हमारा प्रथम बार याज्ञवल्क्य से साक्षात्कार होता है, जो अपनी दोनों भार्याओं—कात्यायनी तथा मैत्रेयी को— अपना धन विभक्त कर वन में जाते हैं, तथा मैत्रेयी के प्रति उनकी दिव्य दार्शनिक-सन्देश की वाणी हमें यहीं श्रवणगोचर होती है। तृतीय तथा चतुर्थ अध्यायों में जनक तथा याज्ञवल्क्य का आख्यान है। तृतीय में जनक की सभा में नाना ब्रह्मवादियों का याज्ञवल्क्य के हाथों परान्त तथा मौन होने के विशेष वर्णन हैं। तृतीय में इस प्रकार महाराज जनक वैदेह केवल तटस्थ श्रोता हैं, परन्तु चतुर्थ में वे स्वयं महर्षि से तत्त्वज्ञान सीखते हैं। इस अध्याय के पंचम ब्राह्मण में कात्यायनी तथा मैत्रेयी का आख्यान पुनः स्पष्टतः वर्णित है। पंचम अध्याय में नाना प्रकार के दार्शनिक विषयों का विवेचन है, जैसे—नीति-विषयक, सृष्टि-विषयक तथा परलोक-विषयक तथ्य। षष्ठ अध्याय में प्रवहण जैबलि तथा श्वेतकेतु आरुणेय का दार्शनिक संवाद है, जिसमें जैबलि ने पंचाग्नि-विद्या का विशद् विवेचन किया है। याज्ञवल्क्य का तत्त्वज्ञान बड़ा ही विशद्, प्रामाणिक तथा तर्कपूर्ण है। उपनिषद् युग के वे सर्वमान्य तत्त्वज्ञ थे, जिनके सामने ब्रह्मविद् जनक भी नतमस्तक होकर तत्त्वज्ञान सीखने से पराङ्मुख नहीं होते। वे केवल सिद्धान्तवादी ही नहीं थे, प्रत्युत व्यवहार में तत्त्वज्ञान के उपदेशक थे और उनका यह उपदेश बृहदारण्यक की अध्यात्मशिक्षा का महत्त्वपूर्ण अंग हैं—

आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रेयि—(बृहदा० ४/५/६)।

### श्वेताश्वतर उपनिषद्—

यह उपनिषद् तो शैवधर्म के गौरव-प्रतिपादन के लिए निर्मित प्रतीत होता है। द्वितीय अध्याय में योग का विशद प्राचीन विवेचन है। तृतीय से पंचम तथा शैव तथा सांख्य सिद्धान्तों का प्रतिपादन है। अन्तिम अध्याय में गुरुभक्ति: का तत्त्व वर्णित है। गुरुभक्ति देवभक्ति का ही रूप है (यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ-6/23)। भक्तितत्त्व का प्रथम प्रतिपादन इस उपनिषद् की मुख्य विशेषता है। यह उस युग की रचना है जब सांख्य का वेदान्त से पृथक्करण नहीं हुआ था। दोनों के सिद्धान्त मिश्रित रूप से उपलब्ध होते हैं। औपनिषद् सांख्य से ईश्वर था। इसलिए सांख्य का ईश्वर प्रधान के ऊपर आधिपत्य रखने वाला वर्णित है। वेदान्त में अभी माया का सिद्धान्त विकसित नहीं हुआ था। त्रिगुणों की साम्यावस्थारूपा प्रकृति (अजा) का विवेचन निःसन्देह है, परन्तु अभी तक वह पूरा सांख्य-तत्त्व प्रतीत नहीं होता। क्षर, प्रधान, अक्षर आदि तत्त्वों का समावेश गीता ने यहीं से लिया। शिव परमात्मतत्त्व के रूप में अनेकशः वर्णित हैं। इस प्रकार सांख्य तथा वेदान्त के उदयकाल के सिद्धान्तों की जानकारी के लिए यह उपनिषद् महत्त्वपूर्ण है।

#### 4.5 सारांश—

इस इकाई में आपने प्रमुख उपनिषदों का परिचय प्राप्त किया है। ईशावास्योपनिषद् के अन्तर्गत ईश्वर, जीव, आत्मा, ब्रह्म विद्या-अविद्या आदि प्रमुख तत्त्वों का अध्ययन किया है तथा ईश-उपनिषद्, केन-उपनिषद् कठ-उपनिषद् प्रश्नोपनिषद्, मुण्डक-उपनिषद्, माण्डूक्य-उपनिषद्, तैत्तिरीय-उपनिषद्, ऐतरेय-उपनिषद्, छान्दोग्य उपनिषद्, ब्रह्दारण्यक, श्वेताश्वतर उपनिषद् का परिचय प्राप्त किया है।

#### 4.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें—

1. ईशावास्योपनिषद्— वाचस्पति उपाध्याय।
2. वैदिक साहित्य और संस्कृति— आचार्य बलदेव उपाध्याय
3. संस्कृत साहित्य का इतिहास— डॉ० शिवमूर्ति शर्मा

#### 4.7 स्वपरख प्रश्न / अभ्यास—

1. अन्धं तमः ..... रताः मंत्र की हिन्दी में व्याख्या कीजिये?
2. 'उपनिषद्' शब्द की व्युत्पत्ति समझाइये?
3. केन उपनिषद् के प्रमुख खण्डों को समझाइये?
4. कठशाखा अनुयायी उपनिषद् पर अपने विचार व्यक्त कीजिये?
5. प्रश्नोपनिषद् के नाम की उपादेयता को समझाइये?
7. ऊँकार में कितनी मात्रायें होती हैं समझाइये?

## इकाई—5

### (वैदिक साहित्य का परिचय)

#### इकाई का रूपरेखा—

- 5.1 उद्देश्य
- 5.2 प्रस्तावना
- 5.3 वैदिक संहितायें
- 5.4 प्रमुख ब्राह्मण ग्रन्थ
- 5.5 षड्वेदांग
- 5.6 सूत्र साहित्य
- 5.7 वेदों का रचनाकाल

5.8 आरण्यक साहित्य

5.9 सारांश

5.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

5.11 स्वपरख प्रश्न / अभ्यास

## 5.1 उद्देश्य—

इस इकाई के अध्ययन से आप सम्पूर्ण वैदिक साहित्य का संक्षिप्त परिचय प्राप्त कर सकेंगे। जिसमें वैदिक संहितायें, प्रमुख ब्राह्मण ग्रन्थ, षड्वेदांग, सूत्र साहित्य, वेदों का रचनाकाल, आरण्यक साहित्य का परिचय प्रस्तुत किया गया है।

## 5.2 प्रस्तावना—

इस इकाई में वैदिक संहिताओं के अन्तर्गत (ऋक, यजु, साम, अथर्व) संहिताओं का परिचय प्राप्त कर सकेंगे। वेदानुसार ब्राह्मणों का वर्गीकरण का परिचय प्राप्त कर सकेंगे। षड्वेदांगों में (शिक्षा, व्याकरण, छन्द, निरुक्त, ज्योतिष, कल्प) का वर्णन किया गया है। सूत्र साहित्य के अन्तर्गत श्रौत सूत्र, गृह्य सूत्र, धर्म सूत्र, शुल्ब सूत्र को प्रस्तुत किया गया है।

वेदों का रचनाकाल के अन्तर्गत मैक्समूलर का मत, दीक्षित का मत, लोकमान्य तिलक का मत, शिलालेखों से प्राप्त सूचना को प्रस्तुत किया गया है। आरण्यक साहित्य के अन्तर्गत ऋग्वेदीय आरण्यक, यजुर्वेदीय आरण्यक, सामवेदीय आरण्यक, अथर्ववेदीय आरण्यक को प्रस्तुत किया गया है। यह परिचयात्मक प्रस्तुति आपका ज्ञान संवर्धन करेगी।

## 5.3 वैदिक संहिताओं का परिचय—

### ऋग्वेद—

ऋक् (ऋक्) का अर्थ है— स्तुतिपरक मंत्र। ऋच्यते स्तूयतेऽनया इति ऋक्। ऋग्वेद में विभिन्न देवों की स्तुति का यथा सम्भव निर्देश है। ऋचाओं के द्वारा उन देवों का आह्वान किया जाता है। ऐसी ऋचाओं के संग्रह के कारण इसका नाम ऋग्वेद—संहिता पड़ा।

यह ग्रन्थ महत्त्वपूर्ण होने के साथ ही चारों वेदों में सबसे विशालकाय ग्रन्थ है। यजु, साम और अथर्व तीनों मिलकर भी इससे न्यून है।

इसका विभाजन दो प्रकार से किया गया है।

1. मंडल, अनुवाक, सूक्त और मंत्र।
2. अष्टक्, अध्याय, वर्ग और मंत्र। इनमें से मण्डल वाला क्रम अधिक उपयुक्त और प्रचलित है। इसमें देवता के अनुसार सूक्तों का विभाजन है। अष्टक् वाला विभाजन संख्या और गणना की दृष्टि से

सुन्दर है। इसमें पूरे ऋग्वेद को 8 समान भागों में बाँटा गया है, इन्हें 'अष्टक' कहते हैं। प्रत्येक अष्टक में 8 अध्याय हैं, अतः पूरे ऋग्वेद में 8x8=64 अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय में वर्गों की संख्या भिन्न है, यह संख्या 25 से लेकर 49 तक है। प्रत्येक वर्ग में मंत्रों की संख्या प्रायः 5 है। अष्टकों में अध्यायों की संख्या भी भिन्न है। वह 221 से लेकर 331 तक है। इस प्रकार ऋग्वेद में 8 अष्टक, 64 अध्याय, 2024 वर्ग और 10,552 मंत्र हैं।

ऋषि और देवता के अनुसार ऋग्वेद को 10 मंडलों में विभक्त किया गया है। इसमें 85 अनुवाक, 1028 सूक्त और 10,552 मंत्र हैं। इसमें 11 बालखिल्य सूक्तों के 80 मंत्र भी सम्मिलित हैं।

## यजुर्वेद—

### यजुस् का अर्थ—

यजुर्वेद के यजुस् शब्द की कई व्याख्याएँ हैं, जो विभिन्न दृष्टिकोण से प्रस्तुत की गई हैं। यजुस् के मुख्य अर्थ हैं— 1. यजुर्यजतेः, यज्ञ-सम्बन्धी मंत्रों को यजुस् कहते हैं।

### यजुर्वेद की शाखाएँ—

यजुर्वेद मुख्यतयः दो भागों में विभक्त है—1. शुक्ल यजुर्वेद, 2. कृष्ण यजुर्वेद।

1. **शुक्ल यजुर्वेद** को ही माध्यन्दिन एवं वाज-सनेयि यजुर्वेद भी कहते हैं। शुक्ल यजुर्वेद को शुक्ल कहने का अभिप्राय यह है कि इसमें विशुद्ध मन्त्रात्मक भाग है। इसमें व्याख्यात्मक, विवरणात्मक या विनियोगात्मक भाग नहीं है। ये मन्त्र विविध यज्ञों में पढ़े जाते थे। विशुद्धि और परिष्कार के कारण ही इसे शुक्ल यजुर्वेद कहते हैं।

2. **कृष्ण यजुर्वेद** में मन्त्रों के साथ ही व्याख्या और विनियोग का अंश मिश्रित है, अतः इसे कृष्ण यजुर्वेद कहते हैं।

### प्रतिपाद्य-विषय—

यजुर्वेद कर्मकाण्ड का वेद है। यज्ञ करने वाले तथा यजुर्वेद के मन्त्रों का उच्चारण करने वाले पुरोहित को अध्वर्यु कहते थे। अतएव ऋग्वेद में कहा गया है—**यज्ञस्य मात्रां वि मिमीत उ त्वः**, वह यज्ञ को सम्पन्न करता है। इसीलिए अध्वर्यु की व्याख्या की है—**अध्वरं युनक्ति, अध्वरस्य नेता**, अर्थात् अध्वर्यु यज्ञ का संयोजक एवं सम्पादक होता है। शुक्ल यजुर्वेद वाजसनेयि संहिता के विषय ही प्रायः सभी यजुर्वेदीय संहिताओं के प्रतिपाद्य विषय हैं— वाजसनेयि संहिता के प्रतिपाद्य-विषय अध्याय-क्रम से इस प्रकार हैं— (अध्याय 1-2) दर्शपौर्णमास इष्टियाँ, (अ० 3) अग्निहोत्र और चातुर्मास्य इष्टियाँ, (अ० 4-8) सोमयाग तथा उससे संबद्ध अग्निष्टोम और तीनों सवन, (अ० 9-10) वाजपेय और राजसूय यज्ञ, (अ० 11-18) अग्निचयन, वेदी-निर्माण, (16 वाँ अध्याय रुद्राध्याय कहा जाता है, इसमें रुद्र के स्वरूप का विस्तृत वर्णन है), (अ० 19-21) सौत्रामणी यज्ञ, (अ० 22-25) अश्वमेध यज्ञ, (अ० 26-29) खिल मन्त्रों में पूर्वोक्त अनुष्ठानों से संबद्ध

नवीन मन्त्र, (अ० 30) पुरुषमेध, (अ० 31) पुरुष-सूक्त में विराट-पुरुष का स्वरूप-वर्णन, (अ० 32-33) सर्वमेध, (अ० 34) शिव-संकल्प सूक्त, (अ० 35) पितृमेध, (अ० 36-38) प्रवर्ग्ययाग, (अ० 39) नरमेध या अन्त्येष्टि, (अ० 40) ईशोपनिषद्। उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि विविध यज्ञ काम्य अनुष्ठान थे, जो किसी उद्देश्य-विशेष की पूर्ति के लिए आयोजित होते थे।

### सामवेद—

**सामन् का अर्थ—**सामन् का वास्तविक अर्थ गान है। ऋग्वेद के मन्त्र जब विशिष्ट गान-पद्धति से गाए जाते हैं, तो उनको सामन् (साम) कहते हैं। अतएव पूर्वमीमांसा में गीति या गान को साम कहा गया है—गीतिषु सामाख्या (पूर्व० 2-1-36)। ऋग्वेद और सामवेद अर्थात् ऋचा+गान त्र सामन् हैं। इसको ही अनेक रूप में सामान्य या आलंकारिक रूप में प्रकट करने का प्रयत्न किया गया है।

### मन्त्र संख्या—

सामवेद की पूरी मन्त्र संख्या 1875 है। इसमें ऋग्वेद के मन्त्रों की संख्या 1771 है। इस प्रकार केवल 104 मन्त्र सामवेद में नए हैं। ऋग्वेद के 1771 मन्त्रों में 267 पुनरुक्त हैं। सामवेद के 104 नए मन्त्रों में 5 पुनरुक्त हैं। इस प्रकार ऋग्वेद में सर्वथा अप्राप्त 99 मन्त्र हैं।

### प्रतिपाद्य विषय—

सामवेद में उपासना प्रमुख है। इसमें मुख्यतः सोमयाग से संबद्ध मन्त्रों का संकलन है। पूर्वार्चिक में अग्नि, इन्द्र और पवमान सोम से संबद्ध मन्त्र दिये गये हैं। इन मन्त्रों में सामगान की दृष्टि से प्रत्येक मन्त्र की लय स्मरण करनी होती है, जिनका प्रयोग उत्तरार्चिक में होता है। उत्तरार्चिक के द्विक, त्रिक या चतुष्क आदि (2, 3 या 4 मन्त्रों का समूह) में इन लयों का प्रयोग करना होता है। अधिकांश त्रिक आदि का प्रथम मन्त्र पूर्वार्चिक का होता है, जिसकी लय पर वह पूरा सूक्त (त्रिक आदि) गाया जाता है। यज्ञों के समय उद्गाता इन मन्त्रों को गाता है, अतः यजुर्वेद और सामवेद का घनिष्ठ सम्बन्ध है। सामवेद में सोम, सोमरस, सोमपान, सोमयाग का विशेष महत्त्व है, अतः इसे सोम-प्रधान वेद कह सकते हैं। आध्यात्मिक दृष्टि से सोम ब्रह्म या शिव-तत्त्व है। उसकी प्राप्ति का साधन उपासना है। सामवेद संगीत एवं भक्ति के द्वारा उसकी प्राप्ति का साधन है।

### अथर्ववेद—

#### अथर्वन् का अर्थ—

निरुक्त और गोपथ ब्राह्मण में अथर्वन् शब्द के दो निर्वचन दिये हैं—

1. अथर्वन्—गतिहीन या स्थिरता से युक्त योग।
2. निरुक्त के अनुसार थर्व धातु गत्यर्थक है,



अतः अथर्वन्-गतिहीन या स्थिर। इसका अभिप्राय है-जिसमें चित्तवृत्तियों के निरोधरूपी योग का उपदेश है।

### प्रतिपाद्य विषय-

ब्लूमफील्ड और विन्टरनिट्स ने अथर्ववेद का पूरा नाम अथर्वागिरस वेद माना है और इसकी व्याख्या इस प्रकार की है- अवेस्ता का अथर्वन् शब्द अथर्वन् का प्रतिनिधि है, जिसका अर्थ पुरोहित है। यह अग्नि की पूजा करता था। अथर्ववेद भी अग्नि-पूजा या यज्ञ में विश्वास रखता है। अवेस्ता का अथर्वन् पौरोहित्य के साथ जादू का भी काम करता था। आंगिरस भी प्रागैतिहासिक काल के पुरोहित है। दोनों यज्ञ के साथ ही जादू में भी निपुण थे। अथर्वन् और आंगिरसों में भेद यह है कि अथर्वन् के मन्त्रों में सुख-शान्ति और अच्छाई वाले जादू हैं। इनमें रोग-निवारण आदि के लिए भी मंत्र हैं। आंगिरस मंत्रों में कृत्या-प्रयोग, अभिचार-कर्म, शत्रु-नाशन आदि के मंत्र हैं।

अथर्ववेद में काण्डों के अनुसार प्रतिपाद्य-विषय संक्षेप में इस प्रकार हैं- विविध रोगों की निवृत्ति, पाश-मोचन, रक्षोनाशन, शर्म-प्राप्ति आदि। रोग, शत्रु एवं कृमि-नाशन, दीर्घायुष्य, शत्रु-सेना-संमोहन, राजा का निर्वाचन, शाला-निर्माण, कृषि एवं पशुपालन, ब्रह्मविद्या, विषनाशन, राज्याभिषेक, वृष्टि, पापमोचन, ब्रह्मौदन का वर्णन, ब्रह्मविद्या, कृत्या-परिहार, दुःस्वप्न-नाशन, अन्न-समृद्धि, आत्मा का वर्णन, प्रतिसर मणि, विराट् ब्रह्म का वर्णन, मधुविद्या, पंचौदन अज, अतिथि-सत्कार, गाय का महत्त्व, यक्ष्म-नाशन, कृत्या-निवारण, ब्रह्मविद्या एवं वरण मणि का वर्णन, सर्प-विष-नाशन एवं ज्येष्ठ ब्रह्म का महत्त्व, ब्रह्मोदन, रुद्र, ब्रह्मचर्य का वर्णन, पृथ्वीसूक्त, भूमि का महत्त्व, अध्यात्म-वर्णन, विवाह-संस्कार, व्रात्य-ब्रह्म का वर्णन, दुःख-मोचन, अभ्युदय के लिए प्रार्थना, संमोहन, पितृमेध, यज्ञ, नक्षत्र, विविध मणियाँ, छन्दों के नाम, राष्ट्र का वर्णन, काल का महत्त्व, सोमयाग-वर्णन, इन्द्र-स्तुति। कुन्ताप-सूक्त में राजा परीक्षित के राज्य शासन का वर्णन है।

### 5.4 प्रमुख ब्राह्मण ग्रन्थ-

#### ब्राह्मण का अर्थ-

इन ग्रन्थों को ब्राह्मण कहने के तीन कारण माने जाते हैं, तदनुसार इसके तीन अर्थ हैं-

1. ब्रह्मन् का अर्थ मंत्र है, अतः मन्त्रों की व्याख्या एवं विनियोग प्रस्तुत करने के कारण इन्हें ब्राह्मण कहते हैं।
2. ब्रह्मन् का अर्थ यज्ञ भी है, अतः यज्ञों की व्याख्या और विवरण प्रस्तुत करने वाले ग्रन्थों को ब्राह्मण कहते हैं।
3. ब्रह्मन् का अर्थ रहस्य भी है, अतः वैदिक रहस्यों का उद्घाटन करने के कारण इन्हें ब्राह्मण कहते हैं। इनमें यज्ञों का आध्यात्मिक, आधिदैविक और वैज्ञानिक महत्त्व प्रस्तुत किया गया है। भट्ट भास्कर ने कर्मकांड तथा मंत्रों के व्याख्यान-ग्रन्थों को ब्राह्मण कहा है।

## ब्राह्मणं नाम कर्मणस्तन्मन्त्राणां व्याख्यानग्रन्थः ।

(भट्टभास्कर-तैत्ति०सं० 1-5-1 पर)

वाचस्पति मिश्र ने ब्राह्मण ग्रन्थों का प्रयोजन निर्वचन, मंत्रों का विनियोग, अर्थवाद (प्रतिष्ठान) और विधि माना है।

नैरुक्त्यं यस्य मन्त्रस्य विनियोगः प्रयोजनम् ।

प्रतिष्ठानं विधिश्चैव ब्राह्मणं तदिहोच्यते ॥

### प्रतिपाद्य विषय—

ब्राह्मणों में प्रतिपाद्य विषय को तीन भागों में बाँटा जा सकता है—

1. **विधि**—जिसमें यज्ञ तथा उससे सम्बद्ध कार्य—कलाप के लिए नियम दिये गये हैं।
2. **अर्थवाद**— जिसमें यज्ञों का महत्त्व तथा उससे संबद्ध उपाख्यान दिये गये हैं।
3. **उपनिषद्**— जिसमें आध्यात्मिक एवं दार्शनिक विचारों का समावेश है। ब्राह्मणों में यज्ञ के लिए चार पुरोहितों की आवश्यकता बताई है। इन चारों का एक-एक वेद से सम्बन्ध है।

1. होता— यह यज्ञ में ऋग्वेद के मन्त्रों का पाठ करता है।

2. अध्वर्यु— यह यज्ञ करता है और यजुर्वेद के मन्त्रों का पाठ करता है।

3. उद्गाता— यह सामवेद के मन्त्रों का गान करता है।

4. ब्रह्मा— यह चारों वेदों का ज्ञाता होता है। चारों पुरोहितों में इसका स्थान सर्वोच्च होता है। इसके निरीक्षण एवं निर्देशन में यज्ञ होता है।

### मन्त्र और ब्राह्मण—

संहिताओं और ब्राह्मण ग्रन्थों का स्वतन्त्र अस्तित्व है। मन्त्रभाग का कर्मकांड में विनियोग होता है, ब्राह्मण भाग मन्त्रों के विनियोग की विधि बताता है। एक मूल है और दूसरा उसका व्याख्यान या भाष्य। यज्ञों में मन्त्रों से ही आहुति दी जाती है, ब्राह्मण भाग उसकी उपयोगिता बताता है। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। वेद शब्द मूलतः वैदिक संहिताओं का ही वाचक है, ब्राह्मण ग्रन्थों का नहीं। वैदिक साहित्य में ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषदों का भी समावेश है। वेद शब्द का गौण अर्थ वैदिक-साहित्य लेने पर ब्राह्मणों को भी वेद कहा जा सकता है। अतएव गौण अर्थ को लेते हुए **मन्त्र-ब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्**, मन्त्र और ब्राह्मणों को वेद कहते हैं, यह उक्ति प्रचलित है। यही भाव आपस्तम्ब श्रौतसूत्र (24-1-31), बौधायन गृह्यसूत्र (2-6-3), कौशिक सूत्र (1-3), तन्त्रवार्तिक (1-3-10), शांकरभाष्य ( वेदान्त-दर्शन 1-3-33) आदि में भी प्रकट किया गया है। मन्त्रों और ब्राह्मणों में वस्तुतः मौलिक भेद है। यथा-भाव-भेद, विषय-भेद और प्रक्रिया-भेद। अतः वास्तविक रूप में दोनों को वेद कहना असंगत एवं अनुपयुक्त है।

### ब्राह्मणों की भाषा एवं शैली—

ब्राह्मण ग्रन्थों की भाषा सरल, सरस और प्रसाद गुण-युक्त है। वर्ण्य विषय की दुरुहता को देखते हुए इन ग्रन्थों में प्रयत्न किया गया है कि लम्बे समासों, क्लिष्ट पदों और अस्पष्टार्थक शब्दों का प्रयोग न किया जाए। शैली प्रवाहयुक्त और रोचक है। आख्यानों के प्रसंग में शैली की रोचकता विशेष रूप से उल्लेखनीय है। ब्राह्मणों की भाषा वैदिक और लौकिक संस्कृत को जोड़ने वाली सुन्दर कड़ी है। यज्ञिय, दार्शनिक एवं गूढ़ प्रसंगों को भी सरल भाषा में प्रस्तुत किया गया है। ब्राह्मणों में वैदिक और लौकिक शब्दावली का समन्वय है। शब्द-रूपों का वैविध्य ऋग्वेद की अपेक्षा बहुत कम है। लोट् लकार का प्रयोग मिलता है, परन्तु अल्प मात्रा में। तुमर्थक प्रत्ययों के प्राचीन रूप यत्र-तत्र दृष्टिगोचर होते हैं। वैदिक छन्दों से नियन्त्रित न होने के कारण ब्राह्मणों में भाव-प्रकाशन की पूर्ण स्वतन्त्रता है। कहीं-कहीं गाथा छन्दों से मिलते हुए पद्य भी हैं। ऐसे पद्य मुख्यतया आख्यानों में हैं।

### वेदानुसार ब्राह्मणों का वर्गीकरण—

ऋग्वेदीय—1. ऐतरेय ब्राह्मण, 2. शांखायन (कौषीतकि) ब्राह्मण, शुक्ल यजुर्वेदीय—3. शतपथ-ब्राह्मण, कृष्ण यजुर्वेदीय—4. तैत्तिरीय ब्राह्मण, सामवेदीय—5. पंचविश (तांड्य या प्रौढ) ब्राह्मण, 6. षड्विंश, 7. सामविधान, 8. आर्षेय, 9. दैवत, 10. छान्दोग्य (उपनिषद्) ब्राह्मण, 11. संहितोपनिषद्, 12. वंश-ब्राह्मण, 13. जैमिनीय (तलवकार) ब्राह्मण, अथर्ववेदीय—14. गोपथ-ब्राह्मण।

श्री डॉ० बटकृष्ण घोष ने 16 अनुपलब्ध ब्राह्मणों के उपलब्ध उद्धरण एकत्र किये हैं। उनके नाम हैं—शाकटायन, भाल्लवि, जैमिनीय (या तवलकार), आह्वरक, कंकति, कालबन्नि, चरक, छागलेय, जाबालि, पैंगायनि, माषशरावि, मैत्रायणीय, रीरुकि, शैलालि, श्वेताश्वतर और हारिद्रविक। श्री पं० भगवद्दत्त ने इनके अतिरिक्त आठ अन्य ब्राह्मणों के नाम दिये हैं। इनके नाम हैं—काठक, खाण्डिकेय, औरवेय, गालव, तुम्बरु, आरुणेय, सौलभ और पराशर।

### ब्राह्मण ग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय—

#### ऐतरेय ब्राह्मण—

इनमें 40 अध्याय हैं, जो पाँच-पाँच अध्यायों की 8 पंचिकाओं में विभक्त हैं। इसमें मुख्य रूप से सोमयाग का वर्णन है। इसमें सोमयाग से संबद्ध अग्निष्टोम, गवामयन, द्वादशाह, अग्निहोत्रादि का वर्णन है। बाद में राज्याभिषेक और कुलपुरोहित के अधिकार का वर्णन है। अन्तिम 10 अध्यायों में उपाख्यान और इतिहास है। इसकी सप्तम पंचिका के 3 अध्यायों (31 से 33 अध्याय) में प्रसिद्ध शुनःशेष का आख्यान है, जो 'चरैवति, चरैवेति' गाथाओं के कारण विशेष विख्यात है। यह ऋग्वेद का सबसे प्रसिद्ध ब्राह्मण है। इसके रचयिता महिदास ऐतरेय माने जाते हैं।

## शांखायन ब्राह्मण—

इसको कौषीतकि ब्राह्मण भी कहते हैं। इसमें 30 अध्याय हैं। इसमें अग्न्याधान, अग्निहोत्र, दर्श-पौर्णमास और चातुर्मास्य इष्टियों का वर्णन है। इसमें भी सोमयाग प्रधान विषय है।

## शतपथ ब्राह्मण—

शुक्ल यजुर्वेद का यह एकमात्र ब्राह्मण है। इसके दो पाठ प्राप्त होते हैं— 1. माध्यन्दिन-शाखीय। इसमें 14 कांड और 100 अध्याय हैं। 100 अध्यायों के कारण ही इसका नाम शतपथ पड़ा। 2. कण्डशाखीय। इसमें 17 कांड और 104 अध्याय हैं। शतपथ-ब्राह्मण के रचयिता याज्ञवल्क्य ऋषि माने जाते हैं। इसके प्रारम्भिक 9 कांडों में शुक्ल यजुर्वेद के 18 अध्यायों की व्याख्या है। इसमें दर्श-पौर्णमास, अग्निहोत्र, चातुर्मास्य, वाजपेय, राजसूय, अग्निरहस्य, अश्वमेध, पुरुषमेध और सर्वमेध आदि का विस्तृत वर्णन है। इसमें पुरुरवा-उर्वशी, दुष्यन्तपुत्र भरत, मत्स्य, जल-प्लावन तथा मनु की कथाएँ हैं। इसमें सर्वप्रथम सांख्य के आचार्य आसुरि तथा पाण्डव राजा जनमेजय का उल्लेख है। बौद्ध साहित्य में प्राप्त पारिभाषिक शब्द अर्हत्, श्रमण और प्रतिबुद्ध का सर्वप्रथम प्रयोग इसी ग्रन्थ में है। इसकी शैली सरस, सरल, प्रसाद गुण-युक्त और प्रभावशाली है।

## तैत्तिरीय ब्राह्मण—

यह कृष्ण-यजुर्वेदीय शाखा का एकमात्र ब्राह्मण है। इसमें 3 कांड हैं। इसमें कांड 1 में अग्न्याधान, वाजपेय, सोम, राजसूय आदि, कांड 2 में सौत्रामणि, बृहस्पतिसव और वैश्यसव आदि तथा कांड 3 में नक्षत्रेष्टि का मुख्य रूप से वर्णन है। कृष्ण यजुर्वेद की अन्य शाखाओं के ब्राह्मण अप्राप्त हैं।

## सामवेदीय ब्राह्मण—

सामवेद के 11 ब्राह्मण ग्रन्थ प्राप्त होते हैं। इनमें ताण्ड्य शाखा का **पंचविंश ब्राह्मण** मुख्य है। इसको ही प्रौढ़, ताण्ड्य और महाब्राह्मण भी कहते हैं। इसमें 25 अध्याय हैं। इसका मुख्य विषय सोमयाग है। **षड्विंश ब्राह्मण** में 5 प्रपाठक हैं। यह वस्तुतः पंचविंश ब्राह्मण का ही परिशिष्ट है। इसके अन्तिम प्रपाठक को **अद्भुत ब्राह्मण** कहते हैं। इसमें उत्पातों की शान्ति का विधान है। छान्दोग्य ब्राह्मण को मंत्र ब्राह्मण भी कहते हैं। इसमें दो ग्रन्थ सम्मिलित हैं—

**1. छान्दोग्य ब्राह्मण—** इसमें 2 प्रपाठक हैं। प्रत्येक में 8 खंड हैं।

**2. छान्दोग्य उपनिषद्—** इसमें आठ प्रपाठक हैं। यह प्रसिद्ध छान्दोग्य उपनिषद् है। सामविधान ब्राह्मण में 3 प्रकरण हैं। जिनमें कृच्छ्र अतिकृच्छ्र आदि व्रतों, पुत्र, ऐश्वर्य एवं आयुष्य की प्राप्ति के लिए विविध अनुष्ठानों का वर्णन है। **आर्षेय ब्राह्मण** में 3 प्रपाठक हैं। यह सामवेद की आर्षानुक्रमणी का काम करता है। **दैवत ब्राह्मण** या **देवताध्याय ब्राह्मण** में 3 खंड हैं। इसमें देवताओं और छन्दों का वर्णन है। इसमें दिये गये छन्दों

के निर्वचन विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। संहितोपनिषद् ब्राह्मण में सामगान की पद्धति का विवेचन है। वंश ब्राह्मण में सामवेद के गुरुओं की वंश-परम्परा वर्णित है। **जैमिनीय या तलवकार ब्राह्मण** में यागानुष्ठानों का महत्त्व वर्णित है। इसका ही एक भाग जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण नाम से प्रसिद्ध है, जो **गायत्रयुपनिषद्** भी कहा जाता है।

### गोपथ ब्राह्मण—

यह अथर्ववेद का एकमात्र ब्राह्मण है। इसके दो भाग हैं— 1. पूर्व भाग या पूर्व गोपथ, 2. उत्तर भाग या उत्तर गोपथ। प्रथम में 5 प्रपाठक या अध्याय हैं, द्वितीय में 6। पूर्व भाग में ये विषय वर्णित हैं— ओंकार और गायत्री का महत्त्व, ब्रह्मचारी के कर्तव्य, ऋत्विजों के कार्य एवं उनकी दीक्षा, संवत्सर सत्र, पुरुषमेध, अश्वमेध, अग्निष्टोम आदि प्रसिद्ध याग। उत्तर भाग में विविध यज्ञों और उनसे संबद्ध आख्यायिकाओं का वर्णन है। इसके रचयिता गोपथ ऋषि माने जाते हैं।

### 5.5 षड्वेदांग—

#### वेदांग का अर्थ—

वेदस्य अंगानि, वेद के अंग। अंग का अर्थ है— अङ्ग्यन्ते ज्ञायन्ते एभिरिति अंगानि, अर्थात् वे उपकारक तत्त्व जिनसे वस्तु के स्वरूप का बोध होता है। वेदों के वास्तविक अर्थ के ज्ञान के लिए जिन साधनों की उपयोगिता थी, उन्हें वेदांग कहते थे। वेदांगों के द्वारा मंत्रों का अर्थ, उनकी व्याख्या एवं यज्ञादि में उनके विनियोग का बोध होता था।

#### संख्या—

वेदांग 6 माने जाते हैं। 1. शिक्षा, 2. व्याकरण, 3. छन्द, 4. निरुक्त, 5. ज्योतिष, 6. कल्प।

शिक्षा व्याकरणं छन्दो निरुक्तं ज्योतिषं तथा।

कल्पश्चेति षडंगानि वेदस्याहुर्मनीषिणः॥

ये वेदांग सामान्यतया सूत्र-शैली में लिखे गये हैं। वैदिक कर्मकाण्ड, विनियोग एवं यज्ञ-विधि आदि के नियम बहुत विस्तृत और व्यापक थे, अतः संक्षेप में स्मरणार्थ सूत्र-शैली को अपनाया गया है। पाणिनीय शिक्षा में वेद-पुरुष के 6 अंगों के रूप में 6 वेदांगों का वर्णन है— छन्द वेदपुरुष के पैर हैं, कल्प हाथ हैं, ज्योतिष नेत्र हैं, निरुक्त कान हैं, शिक्षा नासिका है और व्याकरण मुख है।

छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते।

ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते॥

शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य, मुखं व्याकरणं स्मृतम्।

तस्मात् सांगमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते॥

## शिक्षा—

शिक्षा का अर्थ है— वर्णोच्चारण की शिक्षा देना। सायण ने ऋग्वेदभाष्य-भूमिका में शिक्षा का अर्थ दिया है— जिसमें स्वर, वर्ण आदि के उच्चारण की शिक्षा दी जाती है, उसे शिक्षा कहते हैं।

**स्वरवर्णाद्युच्चारणप्रकारो यत्र शिक्ष्यते उपदिश्यते सा शिक्षा।**

अतएव शिक्षा का उद्देश्य है— वर्णोच्चारण की शिक्षा देना, किस वर्ण का किस स्थान से उच्चारण किया जाता है, उसमें क्या प्रयत्न करना पड़ता है, वर्ण कितने हैं, उनका किस रूप में विभाजन होता है, कितने स्थान और प्रयत्न हैं, शरीर—वायु किस प्रकार वर्ण—रूप में परिवर्तित होती है, कितने स्वर हैं, किस स्वर का किस प्रकार उच्चारण किया जाता है, इत्यादि।

## व्याकरण—

**मुखं व्याकरणं स्मृतम्** व्याकरण को वेदपुरुष का मुख माना जाता है। मुख अभिव्यक्ति और विश्लेषण का साधन है, तद्वत् व्याकरण भी पद—पदार्थ, एवं वाक्य—वाक्यार्थ की अभिव्यक्ति तथा प्रकृति—प्रत्यय के विश्लेषण का साधन है। अतएव व्याकरण का अर्थ है—**व्याक्रियन्ते विविच्यन्ते शब्दा अनेनेति व्याकरणम्**, जिसके द्वारा प्रकृति—प्रत्यय का विवेचन किया जाता है।

## छन्द—

वैदिक मन्त्रों के उच्चारण के लिए छन्दस् (छन्द) का ठीक ज्ञान अनिवार्य है। इसके लिए छन्दो—विषयक ग्रन्थों की रचना हुई। इस विषय का अत्यल्प साहित्य उपलब्ध है। यास्क ने निरुक्त (7—19) में छन्दस् का निर्वचन छद् (ढकना) धातु से दिया है— छान्दांसि छादनात् अर्थात् छन्द भावों को आच्छादित करके समष्टिरूप प्रदान करते हैं। कात्यायन ने सर्वानुक्रमणी में छन्द का लक्षण दिया है— यदक्षरपरिमाणं तच्छन्दः, अर्थात् संख्या—विशेष में वर्णों की सत्ता छन्द है। प्रत्येक छन्द में वर्णों की संख्या निर्धारित रहती है। वैदिक छन्द' उपशीर्षक में इसका वर्णन किया जा चुका है।

प्राचीन छन्दो—विषयक सामग्री निम्नलिखित ग्रन्थों में प्राप्त होती है— (1) शांखायन श्रौत—सूत्र (केवल 7—27 में), (2) ऋग्वेद—प्रातिशाख्य (पटल 16 से 18 में), (3) सामवेद का निदान सूत्र, (4) पिंगल—प्रणीत छन्द—सूत्र, (5.) कात्यायन—कृत दो छन्दोऽनुक्रमणियाँ।

वैदिक छन्द वृत्तात्मक (वर्णवृत्त) हैं। इनमें प्रत्येक पाद में वर्णों की संख्या निर्धारित होती है। ऋक्—प्रातिशाख्य के तीन पटलों में ऋग्वेद में प्रयुक्त छन्दों का विस्तृत वर्णन है। निदान—सूत्र में वैदिक छन्दों के नाम और लक्षण दिये हैं। इसमें छन्दों के अतिरिक्त सामवेद के अंग—उक्थ, स्तोम, गान—का भी विवेचन है। कुछ प्राचीन लेखक इसे पतंजलि की रचना मानते हैं। इसमें 10 अध्याय हैं। अन्त में प्रयुक्त छन्दों की अनुक्रमणी दी गयी है। पिंगल के छन्दःसूत्र के पूर्व भाग में वैदिक छन्दों का विवेचन है। उत्तर भाग में लौकिक छन्दों का विश्लेषण है। यद्यपि यह स्वयं को वेदांग कहता है, परन्तु रचना की दृष्टि से

परवर्ती ज्ञात होता है, क्योंकि इसमें लौकिक छन्दों का विशेष विवेचन है। यह वैदिक छन्दों की अपेक्षा लौकिक छन्दों का अधिक प्रामाणिक ग्रन्थ है। कात्यायन-कृत छन्दोऽनुक्रमणी में ऋग्वेद में प्रयुक्त छन्दों की नामावलि है तथा उसी की सर्वानुक्रमणी के प्रारम्भ में 9 अध्यायों में वैदिक छन्दों पर संक्षिप्त निबन्ध हैं।

### निरुक्त-

इसमें वैदिक शब्दों के निर्वचन की पद्धति दी गयी है। संप्रति यास्क (800 ई0पू0 के लगभग) कृत निरुक्त ही इस विषय का प्रामाणिक ग्रन्थ उपलब्ध है। यह 'निघण्टु' नामक वैदिक-शब्द-कोष पर आश्रित है तथा उसी का व्याख्या ग्रन्थ है। इसमें वैदिक मन्त्रों की निर्वचनात्मक व्याख्या का सर्वप्रथम स्तुत्य प्रयास है। इस वेदार्थ-पद्धति को नैरुक्त-पद्धति कहा जाता है। यास्क ने वैदिक देवतावाचक शब्द अग्नि, इन्द्र, वरुण, सविता आदि को निर्वचनात्मक मानकर इनसे संबद्ध मन्त्रों के चार-चार प्रकार के अर्थ प्रस्तुत किए हैं- आध्यत्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक और अधियज्ञ। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने यास्क की प्रक्रिया को प्रामाणिक माना है और तदनुसार ऋग्वेद और यजुर्वेद का भाष्य किया है।

यास्क ने अपने पूर्ववर्ती निरुक्तकारों (औदुम्बरायण, गार्ग्य, शाकपूणि आदि) का निरुक्त में उल्लेख किया है। निरुक्त के प्राचीन टीकाकारों में विशेष उल्लेखनीय हैं- दुर्गाचार्य, स्कन्दस्वामिन्, महेश्वर। निरुक्त का आलोचनात्मक संस्करण प्रकाशित करने का श्रेय डॉ० लक्ष्मणस्वरूप को है। इन्होंने इसका अंग्रेजी अनुवाद भी प्रकाशित किया है। निघण्टु में 5 अध्याय हैं। (1) प्रथम तीन अध्यायों में पर्यायवाची शब्द हैं, जैसे- पृथ्वी-वाचक-21 शब्द, मेघवाचक-30 शब्द, वाणीवाचक-57 शब्द, जलवाचक-100 शब्द। निरुक्त के प्रथम तीन अध्यायों में इन पर्याय-शब्दों की व्याख्या है, अतः इन तीन अध्यायों को नैघण्टुक काण्ड कहते हैं। (2) निघण्टु के चतुर्थ अध्याय में कठिन और अस्पष्ट वैदिक शब्द दिये हैं। इन शब्दों की व्याख्या एवं स्पष्टीकरण निरुक्त के 4 से 6 अध्यायों में है। इसे नैगमकाण्ड या ऐकपदिक कहते हैं। (3) निघण्टु के पंचम अध्याय में देवतावाचक शब्द हैं। इनकी व्याख्या निरुक्त 7 से 12 अध्याय में है। इसे दैवतकाण्ड कहते हैं। इसमें पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्युलोक के देवों के विषय में विवेचन है। इसका 1 परिशिष्ट भी 13 वें अध्याय के नाम से उपलब्ध है। इसमें अक्षर, सोम, जातवेदम् आदि का वर्णन है।

निरुक्त के प्रतिपाद्य विषय 5 हैं- वर्णागम, वर्ण-विपर्यय, वर्ण-विकार, वर्ण-नाश और धातुओं का अनेक अर्थों में प्रयोग।

**वर्णागमो वर्णविपर्ययश्च, द्वौ चापरौ वर्णविकारनाशौ।**

**धातोस्तदर्थतिशयेन योगस्तदुच्यते पंचविषं निरुक्तम्॥**

शब्द-व्युत्पत्ति, शब्द-निर्वचन-शास्त्र, भाषा-विज्ञान और अर्थ-विज्ञान का यह सबसे प्राचीन प्रामाणिक ग्रन्थ है।

### ज्योतिष-

वैदिक यज्ञों के शुभ मुहूर्त-निर्धारण के लिए ज्योतिष नामक वेदांग की आवश्यकता हुई। वेदांग-ज्योतिष में इसका महत्व बताया गया है कि यह शास्त्र यज्ञों का काल-विधान बताता है।

**वेदा हि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः कालानि पूर्वा विहिताश्च यज्ञाः।**

**तस्मादिदं कालविधानशास्त्रं, यो ज्योतिषं वेद स वेद यज्ञम्।।**

वेदांग-ज्योतिष नामक एक ज्योतिष का प्राचीन ग्रन्थ प्राप्त होता है। इसका दो वेदों से सम्बन्ध है- 1. यजुर्वेद से, याजुष ज्योतिष, इसमें 43 श्लोक हैं। 2. ऋग्वेद से, आर्च ज्योतिष, इसमें 36 श्लोक हैं। इसका कर्ता आचार्य लगध को माना जाता है। (कालज्ञानं प्रवक्ष्यामि लगधस्य महात्मनः आर्च ज्योतिष, श्लोक 2)। डॉ० थीबो, शंकर बालकृष्ण दीक्षित, लोकमान्य तिलक तथा सुधाकर द्विवेदी आदि विद्वानों ने इसके श्लोकों की यथा-समय व्याख्या की है। ज्योतिष के सिद्धान्त-ग्रन्थों में गणना 12 राशियों से की जाती है, किन्तु इस ज्योतिष में राशियों का कहीं नाम-निर्देश नहीं है, अपितु 27 नक्षत्र ही गणना के आधार हैं। शंकर बालकृष्ण दीक्षित ने वेदांग-ज्योतिष का समय 1,400ई०पू० माना है।

वैदिक-ज्योतिष में सूर्य, चन्द्र, ग्रह तथा नक्षत्रों की गति का निरीक्षण, परीक्षण एवं विवेचन होता था। सौर और चन्द्र मासों की गणना होती थी। यज्ञीय कार्यों के लिए चान्द्रमास ही मुख्य माना जाता था।

**कल्प-**

वेदांगों में कल्पसूत्रों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। कल्प का अर्थ है-यज्ञीय विधियों का समर्थन और प्रतिपादन। कल्प्यते समर्थ्यते यागप्रयोगोऽत्र, इति व्युत्पत्तेः'। कल्प की दूसरी व्याख्या है- जिसमें वैदिक कर्मों का व्यवस्थित रूप से वर्णन या प्रतिपादन होता है। कल्पो वेदविहितानां कर्मणामानुपूर्व्येण कल्पनाशास्त्रम्'।

**5.6 सूत्र साहित्य-**

**श्रौतसूत्र-**

श्रौतसूत्रों में महत्त्वपूर्ण वैदिक यज्ञों का क्रमबद्ध वर्णन है। इन यज्ञों में प्रमुख ये हैं- दर्श, पौर्णमास, सोमयाग, वाजपेय, राजसूय, सौत्रामणी, अश्वमेध आदि। इनके अतिरिक्त दक्षिण, आहवनीय और गार्हपत्य अग्नियों की इष्टियों का वर्णन है। प्रमुख श्रौत सूत्र ये हैं- 1. ऋग्वेदीय-आश्वलायन और शांखायन। 2. शुक्ल यजुर्वेदीय-कात्यायन श्रौतसूत्र। 3. कृष्ण यजुर्वेदीय-बौधायन, आपस्तम्ब, हिरण्यकेशी या सत्याषाढ, वैखानस, भारद्वाज, मानव और वाराह श्रौतसूत्र। 4. सामवेदीय- आर्षेय या मशक, लाट्यायन, द्राह्यायण और जैमिनीय श्रौतसूत्र। 5. अथर्ववेदीय- वैतान-श्रौतसूत्र।

**गृह्यसूत्र-**



गृह्यसूत्रों में 16 संस्कारों, 5 महायज्ञों, 7 पाक—यज्ञों, गृह—निर्माण, गृह प्रवेश, पशुपालन, रोगनाशक विधियों आदि का वर्णन है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि गृहस्थ जीवन से संबद्ध सभी संस्कारों और विधियों, का इनमें वर्णन है। प्रमुख गृह्यसूत्र ये हैं— 1. ऋग्वेदीय—आश्वलायन, शांखायन

2. शुक्लयजुर्वेदीय— पारस्कर गृह्यसूत्र,

3. कृष्णयजुर्वेदीय, कौषीतक गृह्यसूत्र—बौधायन, आपस्तम्ब, हिरण्यकेशी, वैखानस, भारद्वाज, मानव और बराह गृह्यसूत्र।

4. सामवेदीय—द्राह्यायण, गोभिल, खादिर और जैमिनीय गृह्यसूत्र।

5. अथर्ववेदीय— कौशिक गृह्यसूत्र।

### धर्मसूत्र—

धर्मसूत्रों में नीति, धर्म, रीति, प्रथाओं, चारों वर्णों और आश्रमों के कर्तव्यों और सामाजिक नियमों का वर्णन है। प्रमुख धर्मसूत्र ये हैं— 1. ऋग्वेदीय— वसिष्ठ और विष्णु धर्मसूत्र, 2. शुक्ल यजुर्वेदीय—हारीत और शंख धर्मसूत्र, 3. कृष्ण यजुर्वेदीय—बौधायन, आपस्तम्ब और हिरण्यकेशी धर्मसूत्र, 4. सामवेदीय—गौतम धर्मसूत्र।

### शुल्बसूत्र—

शुल्ब—सूत्रों में यज्ञवेदी के निर्माण से संबद्ध नाप आदि का तथा वेदी के निर्माण आदि के नियमों का वर्णन है। ये श्रौतसूत्रों से संबद्ध विषय का वर्णन करते हैं। इनमें भारतीय ज्यामिति के विकास का उत्कृष्ट रूप मिलता है। प्रमुख शुल्ब—सूत्र ये हैं—

1. शुक्ल—यजुर्वेदीय—कात्यायन शुल्बसूत्र,

2. कृष्ण यजुर्वेदीय—बौधायन, आपस्तम्ब और मानव शुल्बसूत्र।

## 5.7 वेदों का रचनाकाल—

प्राचीन भारतीय आर्य सभ्यता और संस्कृति के परिचायक एकमात्र ग्रन्थ, वेदों का निर्माण—काल आज भी अन्धकार में है। वेदों को सर्व प्राचीन ग्रन्थ के रूप में स्वीकार करते हुए भी विद्वान् इनके निर्माण—काल को लेकर एकमत नहीं हैं। भारतीय परम्परा तो इनके काल निर्धारण की चिन्ता ही नहीं करती। इसके अनुसार वेद अपौरुषेय हैं। वैदिक ऋषियों ने वेद मंत्रों की रचना नहीं की, वे मंत्रों के द्रष्टा थे, इसीलिए कहा भी गया है— 'ऋषिःदर्शनात्' वेद मंत्र का दर्शन करने के कारण ही वे ऋषि (द्रष्टा) कहलाये। यही कारण था कि भारतीय परम्परा वेदों के निर्माण—काल के बारे में चुप है। अनादिकाल से चली आयी आदि—पुरुष की वाणी में प्रतिनिधि वेद—मन्त्रों के पठन—पाठन, उनकी विभिन्न प्रकार के सुरक्षा की ओर भारतीय विद्वत्परम्परा का ध्यान भले ही गया हो, वेदों की आलोचना के लिए उनकी श्रद्धायुक्त बुद्धि आगे

नहीं बढ़ती। भारतीय परम्परा इन्हें अनादि और अनन्त काल से अविच्छिन्न मानती है। ऐतिहासिक दृष्टि से खोज-बीन करने वाले पाश्चात्य विद्वानों ने भारतीय सभ्यता और संस्कृति के अद्भुत स्रोत इन वेद-ग्रन्थों के काल-निर्धारण का भगीरथ प्रयास किया। पाश्चात्य विद्वानों की प्रेरणा से कुछ भारतीय विद्वानों ने भी इस दिशा में प्रयास किया। परन्तु वेदों के निर्माण-काल को लेकर विभिन्न विद्वानों ने जो परिकल्पनाएँ की हैं उनमें सदियों ही नहीं, सहस्राब्दियों का कालान्तर है।

### डॉ० मैक्समूलर का मत—

वेदों के निर्माण काल के निर्धारण का प्रयास करने वाले सर्वप्रथम पाश्चात्य विद्वान् डॉ० मैक्समूलर हैं। इन्होंने अपने 'प्राचीन संस्कृत साहित्य' नामक ग्रन्थ में सर्वप्रथम इस दिशा में प्रयास किया। संहिताओं में सर्वप्राचीन ऋग्वेद संहिता का निर्माण-काल उन्होंने 1200 विक्रम संवत् माना, इस समय के निर्धारण में उन्होंने अपनी कुछ नवीन मान्यताएँ प्रस्तुत कीं। उन्होंने वैदिक साहित्य के विस्तार की अन्तिम सीमा बुद्ध-धर्म का उदय (600 ई०पू०) माना। उनका तर्क है कि बुद्ध धर्म के उदय के साथ ही वैदिक साहित्य का विकास रुक गया। अतः समस्त वैदिक वांगमय को उन्होंने चार भागों में बाँटकर उनके विकास का समय भी निश्चित कर दिया। डॉ० मैक्समूलर वेदों को छन्दः काल, मंत्र-काल, ब्राह्मण-काल तथा सूत्रकाल इन चार भागों में बाँटकर प्रत्येक युग की विचारधारा के उदय और ग्रन्थ निर्माण को 200 वर्षों का समय देते हैं। इस प्रकार सूत्र-ग्रन्थों का निर्माण-काल वे 600 ई०पू० बताते हैं। ब्राह्मण ग्रंथों का निर्माण 800-600 ई०पू० के बीच, 1000-800 ई०पू० के बीच में मंत्रयुग की परिकल्पना करते हैं और बताते हैं कि चारों मंत्र संहिताओं का संकलन इसी युग में हुआ होगा। 1200-1000 ई०पू० के बीच वे छन्दः काल मानते हैं जिसमें वैदिक ऋषियों ने विविध अर्थगौरव से पूर्ण वैदिक मंत्रों की रचनाएँ की होंगी। उनके अनुसार ऋग्वेद के मंत्रों का यही रचना-काल है। इस प्रकार बुद्ध धर्म से पीछे हटते-हटते उन्होंने ऋग्वेद के रचना-काल तक पहुँचने का प्रयास किया।

मैक्समूलर द्वारा स्थापित यह प्रथम मत अनेक भ्रामक धारणाओं से युक्त होते हुए भी बहुत सारे लोगों को मान्य हुआ। परन्तु इस मत में तथ्य कम, कल्पना अधिक है। इस मत की जड़ें तो तीस वर्ष बाद स्वयं मैक्समूलर की अपनी विरोधी मान्यताओं के कारण ही हिल गयीं। 1956 ई० में उन्होंने इस मत का प्रतिपादन किया। सन 1986 ई० में 'भौतिक धर्म' शीर्षक अपनी जिफोर्ड व्याख्यान-माला में उन्होंने स्वयं ही कहा कि इस पृथ्वी पर कोई ऐसी शक्ति नहीं जो यह निश्चय कर सके कि वेदों का निर्माण काल 1000 वि०पू० था या 1500 वि०पू० या 3000 वि०पू० में हुआ।

इस प्रकार इनके द्वारा स्थापित मत स्वयं अपने आप में ही भ्रामक है। इस मत की स्थापना से इतना लाभ अवश्य हुआ कि वेदों के निर्माण व समापन की एक तिथि सीमा निश्चित हो गयी। इनके निर्माण-काल को 1200 वि०पू० के पहले कभी नहीं लाया जा सकता।

### दीक्षित का मत—

महाराष्ट्र के विख्यात ज्योतिर्विद पण्डित शंकर बालकृष्ण दीक्षित ने ज्योतिष गणना के आधार पर ऋग्वेद का निर्माण काल 3500 वि०पू० माना है। शतपथ ब्राह्मण में कृत्तिकाओं के ठीक पूर्वी बिन्दु पर उचित होने का वर्णन है परन्तु आजकल वे पूर्वी बिन्दु से कुछ उत्तर और हट कर उचित होती है। ज्योतिष की गणना के आधार पर दीक्षित जी का यह कहना है कि कृत्तिकाओं की पूर्व-वर्णित स्थिति 3000वि०पू० पहले रही होगी। अतः इसे शतपथ ब्राह्मण का निर्माण-काल माना जा सकता है। तैत्तिरीय संहिता में भी इन नक्षत्रों का वर्णन है। यह संहिता निश्चय ही शतपथ से प्राचीन है। ऋग्वेद तैत्तिरीय से भी प्राचीन है। यदि इन संहिताओं के निर्माण-काल में 250 वर्षों का अन्तर माना जाय तो ऋग्वेद की रचना शतपथ से 500 वर्ष पहले 3500 वि०पू० में हुई होगी। दीक्षित जी इस समय को निचली सीमा मानते हैं। वैसे वे ऋग्वेद की रचना का समय 5500 वि०पू० तक स्वीकार करने के पक्ष में हैं।

### लोकमान्य तिलक का मत—

ज्योतिष गणना के आधार पर लोकमान्य तिलक ऋग्वेद के रचना-काल को और भी प्राचीन सिद्ध करते हैं। उनके मत का मूल आधार ऋग्वेद तथा तैत्तिरीय संहिता में उल्लिखित मृगशिरा नक्षत्र में वसंत सम्पात है। उनका कहना है कि यह वसन्त सम्पात गणना के आधार पर कृत्तिका से 2000 वर्ष पहले पड़ता है। अतः संहिताओं की रचना 5000 वि०पू० में हुई होगी। ऋग्वेद चूँकि सभी संहिताओं में प्राचीन है अतः इसकी रचना लगभग 6000वि०पू० में हुई होगी। इस प्रकार गणना के आधार पर उन्होंने वैदिक साहित्य का काल-क्रम से चार विभाग किया—

1. **अदितिकाल (6000 से 4000 वि०पू० तक)**— देवताओं के नाम, गुण तथा उनके चरित्र का वर्णन करने वाले विधि-वाक्य रूप-मंत्रों (निविदों) की रचना इसी युग में हुई होगी। अदिति को देवताओं की जननी कहा गया है अतः देवताओं की कल्पना इसी युग में हुई होगी।
2. **मृगशिरा काल (4000 से 2500 वि०पू०)**—अधिकांश वैदिक मंत्र इसी काल में रचे गये होंगे।
3. **कृत्तिका काल (लगभग 2500 से 1400 वि०पू० तक)**—तैत्तिरीय संहिता तथा ब्राह्मणों में सर्वप्राचीन शततथ की रचना इसी युग में हुई होगी। वेदांग ज्योतिष का रचना-काल गणितीय गणना के आधार पर 1400 वि० के ही लगभग पड़ता है।

4. अन्तिम काल (1400 से 500 वि०पू० तक)—एक हजार वर्षों के इस काल के बीच श्रौत तथा गृह्य सूत्रों और दार्शनिक ग्रंथों की रचना हुई।

लोकमान्य तिलक का यह मत ज्योतिष गणना पर आधारित होते हुए भी एक अतिरेक पूर्ण कल्पना प्रस्तुत करता है। पाश्चात्य विद्वान् इतने धैर्य और इतनी श्रद्धा से युक्त नहीं हैं जितने भारतीय। अतः उन्हें यह मत ऐतिहासिक तथ्यों से कोसों दूर दिखायी पड़ता है।

### शिलालेखों से प्राप्त सूचना—

सन् 1907 में डॉ० ह्यूगो विन्कलर को एशिया माइनर (टर्की) के बीघाजकोइ नामक स्थान पर एक शिलालेख प्राप्त हुआ। इस शिलालेख में हिताइत एवं मितन्नी दो जातियों के बीच हुई संधि का उल्लेख है। ईंटों पर लिखे गये ये संधि लेख दोनों जातियों के परस्पर कलह को शांत करने के लिए लिखे गये थे। संधि के साक्षी के रूप में यहाँ कुछ देवताओं का उल्लेख हुआ है। इन देवताओं में दोनों जातियों के अपने जातीय देवताओं के अतिरिक्त मित्र, वरुण, इन्द्र तथा नौसत्यौ का उल्लेख हुआ है। इस शिलालेख का समय 1400 ई०पू० निश्चित है। अब प्रश्न यह उठता है कि यहाँ प्रमुख वैदिक देवताओं का उल्लेख कैसे हुआ? क्या एशिया माइनर की ये दो जातियाँ आर्यशाखा से ही सम्बन्धित थीं? या आर्य धर्म को मानने वाले कुछ लोग एशिया माइनर में जा बसे थे? कुछ भी हो इन उल्लेखों से इतना तो निश्चित हो ही जाता है कि संधि—लेख में उल्लिखित इन देवताओं की परिकल्पना आर्य जाति में बहुत पहले ही हो चुकी होगी।

इस प्रकार पाश्चात्य विद्वान् वेदों का निर्माण—काल 2000 से 2500 तक मानने लगे हैं। इस मत का प्रचार होते ही धीरे—धीरे तिलक के मत को भी मान्यता दी जाने लगी है। उनकी ज्योतिष—गणना में अब पाश्चात्य विद्वान् भी विश्वास करने लग गये हैं।

ऋग्वेद के रचना—काल का निर्धारण करने में अनेक पाश्चात्य और भारतीय विद्वानों ने प्रयास किया है। उनके समस्त मतों का उल्लेख यहाँ असंभव है। डॉ० अविनाशचन्द्र ने अपने 'वैदिक इंडिया' ग्रन्थ में भौगोलिक एवं भूगर्भ सम्बन्धी तथ्यों के आधार पर ऋग्वेद का रचना—काल 25000ई०पू० सिद्ध करने का प्रयास किया। इसी प्रकार पं० दीनानाथ शास्त्री ने अपने 'वेदकाल निर्णय' नामक ग्रन्थ में वेदों का काल तीन लाख वर्ष पूर्व सिद्ध करने का प्रशंसनीय प्रयत्न किया।

उपर्युक्त उल्लेख के आधार पर यह सिद्ध हो जाता है कि वेदों का निर्माण काल अत्यन्त विवादास्पद है। विभिन्न विद्वानों द्वारा प्रतिपादित तिथियों में इतना अन्तर है कि उनका समन्वय करना अत्यन्त कठिन है। लोकमान्य तिलक और एशिया माइनर के लेखों के आधार पर वेदों का निर्माण—काल 2000ई०पू० के पहले कभी भी रखा जा सकता है। लेकिन इसके पश्चात् रखना किसी भी प्रकार सम्भव नहीं। मैक्डोनेल ने भी 2000 और 1500 ई०पू० के बीच वेदों की रचना और उनका विस्तार स्वीकार किया है। यही मत आजकल लगभग सभी को मान्य है।

## 5.8 आरण्यक साहित्य—

### आरण्यक का अर्थ—

सायण ने तैत्तिरीय और ऐतरेय आरण्यकों के भाष्य में आरण्यक का अर्थ किया है— जो अरण्य में पढ़ा या पढ़ाया जाये, उसे आरण्यक कहते हैं। इसमें आत्म—विद्या, तत्त्व—चिन्तन एवं रहस्यात्मक विषयों का वर्णन है, अतः गोपथ ब्राह्मण (2—10) और बौधायन—धर्मसूत्र—भाष्य (2—8—3) में आरण्यकों को 'रहस्य—ग्रन्थ' कहा गया है।

ये ग्रन्थ गृहस्थ—जीवन से निवृत्त वानप्रस्थों के लिए थे। जो वन में रहकर मनन, चिन्तन, स्वाध्याय, जप, तप एवं धार्मिक कार्यों में संलग्न रहते थे। ऐसे विषयों के लिए नगरों का वातावरण अनुपयुक्त था।

### प्रतिपाद्य विषय—

आरण्यक ग्रन्थ उपनिषदों के पूर्व रूप हैं। उपनिषदों में आत्मा, परमात्मा, सृष्ट्युत्पत्ति, ज्ञान, कर्म, उपासना एवं तत्त्व—ज्ञान का प्रतिपादन है। उसी तत्त्व—चिन्तन का प्रारम्भ हम आरण्यकों में पाते हैं। आरण्यकों में वैदिक यागों का आध्यात्मिक एवं तात्त्विक स्वरूप बताया गया है। 'विष्णुर्वै यज्ञः' के द्वारा यज्ञ को विष्णु या ब्रह्म का स्वरूप माना गया है। यज्ञ की व्याख्या ब्रह्म की व्याख्या है। अतएव 'यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म' कहा गया है।

यज्ञ को सृष्टि का नियन्ता माना है। आरण्यकों में यज्ञ का दार्शनिक रूप, आत्मविवेचन, तत्त्वमीमांसा, ज्ञान, कर्म और उपासना का समन्वय, वर्णाश्रम—धर्म, निष्काम कर्मयोग तथा प्राण—विद्या आदि का वर्णन है।

### आरण्यकों का संक्षिप्त परिचय—

#### ऋग्वेदीय आरण्यक—

ऋग्वेद के दो आरण्यक ग्रन्थ प्राप्त होते हैं— 1. ऐतरेयारण्यक, 2. शांखायन आरण्यक।

1. ऐतरेयारण्यक—इसमें 18 अध्याय हैं, जो पाँच भागों में विभक्त हैं। इन भागों को आरण्यक कहते हैं। इसमें उक्थ (निष्कैवल्य शास्त्र) महाव्रत, प्राण—विद्या और पुरुष का विवेचन है।
2. शांखायन आरण्यक—इसमें 15 अध्याय हैं। इसके 3 से 6 अध्यायों को कौषीतिकि उपनिषद् कहते हैं। इसमें महाव्रतों आदि का वर्णन है। इसमें काशी, विदेह, कुरु—पांचाल आदि का उल्लेख है।

#### शुक्ल—यजुर्वेदीय आरण्यक—

शुक्ल यजुर्वेद का वस्तुतः कोई आरण्यक नहीं है। शतपथ—ब्राह्मण की माध्यन्दिन और काण्व दोनों शाखाओं के अन्तिम 6 अध्यायों को बृहदारण्यक—उपनिषद् कहते हैं। इसमें बीच—बीच में यज्ञों के रहस्य का वर्णन है, अतः इसे आरण्यक कहा जाता है। परन्तु इसमें उपनिषदों का प्रतिपाद्य विषय अधिक है, अतः इसे नाम से आरण्यक होने पर भी उपनिषद् ही गिना जाता है।

#### कृष्ण यजुर्वेदीय आरण्यक—

कृष्ण यजुर्वेद के दो आरण्यक मिलते हैं— 1. तैत्तिरीय आरण्यक, 2. मैत्रायणीय आरण्यक।

1. **तैत्तिरीय आरण्यक**—यह कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा का आरण्यक है। इसमें 10 परिच्छेद या प्रपाठक हैं। इसमें अग्नि की उपासना, इष्टका चयन, स्वाध्याय, पंच महायज्ञ, अभिचार मंत्र तथा पितृमेघ आदि का वर्णन है। इसमें कुरुक्षेत्र, खाण्डव, पांचाल आदि भौगोलिक नामों का भी उल्लेख है। इसमें ही सर्वप्रथम 'यज्ञोपवीत' का निर्देश है। प्रसृतो ह वै यज्ञोपवीतिनो यज्ञः । इसके दशम प्रपाठक को नारायणीय उपनिषद् कहते हैं।
2. **मैत्रायणीय आरण्यक**— इसको मैत्रायणीय उपनिषद् भी कहते हैं। इसमें 7 प्रपाठक हैं। इसमें आरण्यक और उपनिषद् अंश मिश्रित हैं।

### सामवेदीय आरण्यक—

सामवेद के 2 आरण्यक प्राप्त होते हैं—

1. **तलवकार (तवलकार) आरण्यक**— इसको जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण भी कहते हैं। इसमें ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् मिले हुए हैं। इसमें अनेक साम-मन्त्रों की सुन्दर व्याख्या है। इसमें 4 अध्याय है। चतुर्थ अध्याय के दशम अनुवाक को 'केन उपनिषद्' कहते हैं।
2. **छान्दोग्य आरण्यक**— इसको सत्यव्रत सामश्रमी ने सामवेद-आरण्यक-संहिता नाम से छपवाया था।

### अथर्ववेदीय आरण्यक—

अथर्ववेद का कोई आरण्यक उपलब्ध नहीं है।

### 5.9 सारांश—

इस इकाई में आपने वैदिक संहिताओं, प्रमुख ब्राह्मण ग्रन्थ, षड्वेदांग का परिचय प्राप्त किया है। साथ ही सूत्र साहित्य वेदों का रचनाकाल एवं आरण्यक साहित्य के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त किया। वैदिक साहित्य का अध्ययन आपके ज्ञान में संवृद्धि करेगा।

### 5.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें—

- |   |                  |
|---|------------------|
| 1. संस्कृत साहित्य का इतिहास—             | बलदेव उपाध्याय   |
| 2. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास— | कपिलदेव द्विवेदी |
| 3. वैदिक साहित्य और संस्कृति—             | बलदेव उपाध्याय   |

### 5.11 स्वपरख प्रश्न / अभ्यास

1. ऋग्वेद संहिता के मंडलों की संख्या बताइये?

2. यजुष का अर्थ स्पष्ट कीजिये?
3. सामवेद के प्रतिपाद्य विषय पर प्रकाश डालिये?
4. वेदांग का अर्थ स्पष्ट कीजिये?
5. श्रौतसूत्र के भेद बताइये?
6. वेदों के रचनाकाल के सम्बन्ध में मैक्समूलर के मत को स्पष्ट कीजिये?
7. ऋग्वेदीय आरण्यक के प्रकार समझाइये?
8. वेदानुसार ब्राह्मणों का वर्गीकरण समझाइये?
9. आरण्यक का अर्थ स्पष्ट कीजिये?

### कुछ उपयोगी पुस्तकें—

1. ऋक्सूक्त संग्रह— हरदत्त शास्त्री
2. ऋक्सूक्त संग्रह— तारिणीश झा
3. वैदिक सूक्त संग्रह— डॉ० विजय शंकर पाण्डेय
4. अथर्ववेद— पं० श्रीराम शर्मा आचार्य ।
5. सामवेद— पं० श्रीराम शर्मा आचार्य ।
6. यजुर्वेद— पं० श्रीराम शर्मा आचार्य ।
7. सामवेद संहिता— पं० रामस्वरूप शर्मा गौड़
8. वैदिक साहित्य एवं संस्कृति— आचार्य बलदेव उपाध्याय ।
9. निरुक्त— यास्क ।
10. संस्कृत साहित्य का इतिहास— डॉ० शिवमूर्ति शर्मा ।

11. ईशावास्योपनिषद्— वाचस्पति उपाध्याय ।
12. संस्कृत साहित्य का इतिहास— आचार्य बलदेव उपाध्याय
13. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास— कपिलदेव द्विवेदी